श्रीकृष्ण-सन्देश



वर्ष 3 - अं. 11

स्वर्गीय श्रीजुगलकिशोरजी बिरला—स्मृति अंक

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा

ब्रजकिशोर

मुक्त पुरुषका उन्मुक्त हास्य



श्रीजुगलकिशोर बिरला

जन्म—ज्येष्ठ कृष्णा प्रतिपदा संवत् १९४०; निधन—आषाढ़ कृष्णा द्वितीया संवत् २०२४

"तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम परकाज हित, संपति सँचहि सुजान॥"



श्रीकृष्ण-सन्देश

[धर्म, अध्यात्म एवं संस्कृति-प्रधान मासिक पत्र]

प्रवर्तक

ब्रह्मलीन श्रीजुगलकिशोर बिरला



परामर्श-मण्डल

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती	श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार, 'कल्याण'-सम्पादक
श्रीवियोगीहरि	डा० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'
श्रीजनार्दन भट्ट	श्रीहितशरण शर्मा



प्रबन्ध-सम्पादक

श्रीदेवधर शर्मा

सम्पादक

श्रीव्यथितहृदय



प्रकाशक

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा

दूरभाष : ३३८

●

वार्षिक शुल्क

सात रुपये

आजीवन शुल्क

एकसौ इक्यावन रुपये

वर्ष : ३ }   जून १९६८   { अंक : ११

विषय-सूची

मुद्रक—बम्बई भूषण प्रेस, मथुरा।

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान;
प्राण गंगाके समुज्ज्वल विन्दु

भगवान् श्रीकृष्णकी जन्मभूमिमें नवनिर्माणाधीन भागवत भवनका प्रारूप देखकर मनको अतीव हर्ष हुआ। इस स्थल पर जो रुकावटें हैं, उनका निवारण शीघ्र हो जायगा। भारतीय संस्कृतिका प्रतीक, यह स्थल अपने पूर्ण गौरव से शीघ्रातिशीघ्र भासित हो जायगा—इस आशासे प्रभुके पादपद्मोंमें अभ्यर्थना है।

गोस्वामी श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज
कांकरौली (राजस्थान)

श्रीकृष्ण जन्मस्थानके पवित्र मन्दिरका निर्माण हिन्दू-धर्मकी जागृतिका एक महान् कार्य है। वे धन्यवादके पात्र हैं, जो इस पवित्र कार्यको कर रहे हैं।

स्वामी कृष्णानन्द,
सुखदा भक्ति आश्रम, वृन्दावन।

भगवान् श्रीकृष्णकी जन्मभूमिको देखा। निश्चित् रूपेण विश्वास होता है कि, महाप्रभुने यहीं जन्म लिया होगा। ट्रस्ट मन्दिर-निर्माणके रूप में सर्वोत्तम कार्य कर रहा है।

डाक्टर परशुराम बडोनी,
५० डोयालवाला, देहरादून।

भगवान् श्रीकृष्णकी जन्मभूमिका दर्शन करके कृतार्थ हुआ। भगवान्से प्रार्थना करता हूँ कि, मन्दिरका निर्माण शीघ्रसे शीघ्र पूरा हो।

जैकिशन अग्रवाल,
आडीटर जनरल आफ इंडिया,
बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली।

परम प्रेममय ईश्वरसे 'एकत्व' अनुभव करनेकेलिए वे ही मुझे यहाँ लाये हैं।

संगीताचार्य सुखरंजन चक्रवर्ती,
नेहरू रोड, वृन्दावन।

मनुष्य जीवनकी सफलता है श्रीकृष्ण भक्ति, शेष अन्य सभी कार्य अज्ञानता पूर्ण हैं।

विभा चक्रवर्ती,
नेहरू रोड, वृन्दावन।

आज मथुरा-स्थित श्रीकृष्ण-जन्मस्थानको देखकर महती प्रसन्नता हुई। शांति से पूर्ण वातावरण और रमणीक स्थलीमें योगिराज श्रीकृष्णकी स्मृति सजीव-सी हो जाती है। श्रीकृष्ण के अमृत संदेशोंको व्यापक बनानेकेलिए, यहांकी प्रयत्नपूर्ण व्यवस्था अत्युत्तम प्रतीत हुई।

प्रधानाचार्य, पा० आ० म०
इण्टर कालेज, बदायूं।

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानका मन्दिर हमें बहुत अच्छा लगा। इसका दर्शन करके मैंने अधिक आनन्द प्राप्त किया।

महेन्द्रभूषण शर्मा,
फर्रुखाबाद इंजीनियरिंग वर्क्स,
रेलवे रोड, फर्रुखाबाद।

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानमें मन्दिर-निर्माणकी योजनासे प्राचीन भारतीय संस्कृति स्थायी बन सकेगी। विश्वकी जनता श्रीकृष्णके सन्देश—अनासक्ति, निष्काम कर्मयोग, जनसेवाको ग्रहण करके मानव जन्म सफल करेगी।

शान्तिलाल त्रिवेदी,
सर्वोदय कुटीर, अल्मोड़ा (उ० प्र०)।

'नमो नारायणाय' दास श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके कार्यसे बहुतही प्रभावित हुआ। इस महान् कार्यमें अखिल विश्व सहयोगी बने। श्रीकृष्ण-जन्मभूमि विश्वकेलिए आदर्श-स्थान बने।

दास रामदत्त पार्वतीकर,
(वीणा महाराज) बद्रीनाथ।

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानका दर्शन कर चित्त प्रसन्न हुआ। प्रबन्ध सुन्दर एवं प्रशंसनीय है।

रामसकलसिंह वकील,
सीतामढ़ी कोर्ट, मुजफ्फरपुर।

श्री भगवान् कृष्णके जन्मस्थानको देखकर श्रद्धाकी बाढ़ आगई।

श्रीमोहन मूँदड़ा,
१२६ सदर्न एवेन्यू, कलकत्ता-२९।

भगवान् श्रीकृष्णकी जन्मभूमिका दर्शन करके अधिक आनन्दित हुआ।

सेठ भँवरलाल लड्ढा,
राजनगर, राजस्थान।

श्रीकृष्ण-जन्मभूमिका दर्शन कर हम लोग अति प्रसन्न हुए। निर्माण कार्य तथा प्रबन्ध को देखकर बहुत ही प्रभावित हुए।

रामकुमार गुप्ता तथा १९ अन्यजन,
आल इण्डिया इन्स्टीट्यूट आफ हाइजीन
एण्ड पब्लिक् हैल्थ कलकत्ता-१२।

श्रीकृष्ण-जन्मभूमिका दर्शन करके और विशेषकर प्राचीन ज्यों का त्यों प्राप्त जन्म-कक्ष को देखकर मन एक बार भगवान्की भावनामें डूब जाता है।

माधवशरण,
गीता प्रेस, गोरखपुर।



श्रीकृष्ण-सन्देश

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ।।

वर्ष ३] मथुरा, जून १९६८ [अङ्क ११

श्रद्धांजलि

दाता कर्ण समान, बिरला जुगलकिशोरजी ।
मूर्तिमान सम्मान, हिन्दू धर्म महानके ।।
तज अनित्य निज काय, अजर.अमर वे नित्य हैं ।
करता देश-निकाय--श्रद्धांजलि अर्पित उन्हें ।।

रायकृष्णदास

स्वर्गीय धर्मप्राण श्रीजुगलकिशोरजी बिरलाकी
प्रथम पुण्य तिथिके उपलक्ष्यमें

"हृदयकी दुर्बलतासे वह जितना मुक्त थे, उतनाही वह संशय-मुक्त थे। ईर्ष्या उनकेलिए अनजानी वस्तु थी। क्षुद्र उत्तेजनाओंमें उन्होंने जीवन नहीं जिया। दूसरोंकी गौरव-गरिमा उनकेलिए सबसे बड़ी आनन्द दायिनी होती थी।"

तं वेधा विदधे नूनं

श्रीदेवदत्त शास्त्री

आध्यात्मका इतिहास साक्षी है कि, सतत् परीक्षणोंके द्वारा प्राप्त ज्ञान, विज्ञानका रूप ग्रहण करता है और जब ज्ञान और विज्ञानका तुलनात्मक परीक्षण किया जाता है, तब उसे समन्वयात्मक रूप मिलता है। इस सिद्धान्तकी कसौटीपर जब हम स्वर्गीय श्रीजुगल-किशोरजी बिरलाकी साधनाओंको परखते हैं तो उनकी साधना आध्यात्म-जगत्के समन्वय-मूलक वैज्ञानिक रूपमें परिलक्षित होती है।

श्रीबिरलाजी भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन-परम्पराके पोषक और समर्थक थे। उन्होंने यह भलीभाँति हृदयंगम कर लिया था कि, ऋग्वेद कालमें 'तप'का बहुत बड़ा महत्व था, यजुर्वेद कालमें तप और चिन्तनके साथ कर्मकाण्डका प्रभाव रहा। ऋग्वेद और यजुर्वेद-इन दो कालोंकी प्रवृत्तियोंके समन्वयसे उसी समय 'योग'की साधना अस्तित्वमें आयी और उपनिषद् कालमें सदाचारका समाश्रय प्राप्त कर योग साधना समुन्नत हुई। फलतः समस्त भारतमें सदाचार, ज्ञान और तपकी औपनिषदिक-मन्दाकिनी बह चली। और इस त्रिवेणीकी अन्तः सलिला धारा भक्तिभी प्रवाहित होती रही, जिसका तात्विक विवेचन हमें भगवद्गीता में मिलता है।

स्वर्गीय श्रीबिरलाजीकी आध्यात्मिक साधनाका जब हम पर्यवेक्षण करते हैं तो वैदिक युगके उपनिषदों और आरण्यकोंसे उनकी विचारधारा प्रवाहित जान पड़ती है, किन्तु अत्यधिक मुखर हुई भगवान् बुद्धकी विचारधारा। भगवान् तथागतने कहा कि, 'तृष्णाके क्षय द्वारा दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति हो सकती है और तृष्णाके क्षयकेलिए पवित्र तथा निर्दोष जीवन व्यतीत करना आवश्यक है।'

तथागतके इन उपदेशोंको श्रीविरलाजीने यथार्थ रूपमें ग्रहण कर यह निष्कर्ष निकाला था कि, 'बुद्ध भगवान्‌के ये उपदेश व्यक्तिको दुःखोंसे मुक्त करके निर्वाणकी ओर ले जाते हैं।' श्रीविरलाजीने महायान सम्प्रदायके इस सिद्धान्तको भी स्वीकार किया था कि, साधकका लक्ष्य केवल व्यक्तिगत मुक्ति प्राप्त करना ही नहीं होना चाहिए, बल्कि सभी प्राणियोंका उद्धार करने, करुणा द्वारा जीव-सेवा करने तथा दूसरों के दुःखोंको दूर करनेकी प्रवृत्ति भी होनी चाहिए।'

श्रीविरलाजीकी उपासना-पद्धति और दिनचर्याका अध्ययन-अनुसंधान करनेके पश्चात् यह निश्चय हो जाता है कि, उनकी आन्तरिक, एकान्तिक साधनामें पातञ्जल योग-दर्शनका सिद्धान्त प्रभावित रहा है। योग-दर्शनके आधारपर उन्होंने यह दृढ़ धारणा बनाली थी कि, प्रत्येक पिण्डमें, प्रत्येक अणु-परमाणुमें परमात्माकी चिद्शक्ति विद्यमान है और संसारका प्रत्येक प्राणी उसे इच्छा, क्रिया और ज्ञानके रूपमें अनुभव करता रहा है। ब्रह्माण्डके अणु-अणुमें व्याप्त यह चिदात्म-शक्ति मानव देहमें कुण्डलिनीके रूपमें स्थित है। जो व्यक्ति एक खम्भे वाले, नौ द्वारों वाले और पाँच स्वामियों द्वारा अधिकृत इस शरीर-गेह को नहीं जानता, वह जीवन-सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता और न मोक्ष प्राप्त कर सकता है। उन्होंने चिन्तन, मनन और अध्ययन द्वारा यह निष्कर्ष निकाल लिया था कि, मनुष्यका यह शरीर समस्त सिद्धियोंका आश्रय है। कदाचित् इसीलिए दीर्घजीवी श्रीविरलाजीने केवल शरीरको ही नहीं, बल्कि अपनी वाणी, अपने प्राण, मन और उसके बिन्दु सबको अनन्त शक्तिका आश्रय समझकर संयमित, नियमित, जीवन व्यतीत किया।

उन्होंने अपनी साधनाओं द्वारा यह बोध प्राप्त कर लिया था कि, इस सृष्टिके अणु-परमाणुमें पराशक्ति व्याप्त तो अवश्य है, किन्तु मानव शरीरमें वह सर्वाधिक जाग्रत है और मानवेतर योनियोंमें कम जाग्रत है या प्रसुप्त है। यही कारण है कि, देवताओंको, परमात्मा को नर-देह धारण करनी पड़ती है। किन्तु नर-देह धारण किए परात्पर देवता भी कोई काम नहीं कर सकते, क्योंकि 'इच्छा', 'ज्ञान' और 'क्रिया'के रूपमें त्रिपुटीभूताशक्ति देवताओं के भीतर पूर्णरूपसे जाग्रत नहीं रह सकती। देवता तो प्राकृतिक शक्तियोंके रूपमें होते हैं। उनमें कर्म करनेकी अपेक्षा मात्र भोगनेकीही शक्ति रहती है। उनमें इच्छा-शक्ति और क्रिया-शक्तिका अभाव रहता है। जैसे, अग्नि हर वस्तुको जलाकर भस्म तो कर सकती है, किन्तु किसी वस्तुको भिगो नहीं सकती। भिगो सकने वाली इच्छा उसमें होती ही नहीं, और क्रिया भी नहीं होती।

भगवान् मत्स्य, कूर्म, वराह आदिकी देह धारण कर सकते हैं, किन्तु जब वह नर देह धारण करते हैं, तो उनका पूर्णावतार होता है। जब-जब संसारमें आसुरी प्रवृत्तियोंका प्राबल्य होता है, धर्मका ह्रास होने लगता है, तब-तब भगवान्‌को आसुरी शक्तियोंके उच्छेद के लिए, धर्मकी स्थापनाकेलिए नर-देह धारण करनी पड़ती है।

अवतारवादके इस वैज्ञानिक रहस्यका बोध प्राप्त करनेके बाद निर्गुण उपासक

श्रीबिरलाजी सगुणोपासक बन गए और देवालयोंकी रचना कर सनातन धर्मके इतिहासमें बीसवीं शतीका एक नया अध्याय जोड़ दिया।

स्वर्गीय श्रीबिरलाजीका व्यक्तित्व प्राचीन और नवीन विचारोंके मध्य सेतु था। प्राचीन परम्पराओंमें उनकी गहरी आस्था थी। स्नान, पूजन, जप, हवनको वह महत्व देते थे। सब प्रकारके स्पर्श-दोषोंसे अपनेको बचाये रखकर वंश-परम्परा, कुल-मर्यादाकी रक्षा करनेकी चिन्ता उनमें थी। उन्होंने मन्दिरों, धर्मशालाओं आदिका निर्माण कराया, दीन-दुखियों, साधु-ब्राह्मणोंको दान और भोजन प्रदान किया, ऋषियों, आचार्यों और महात्माओंके वचनों, उपदेशोंको आप्त वाक्य मानकर ग्रहण किया, वर्तमान युगकी मान्यताओंके अनुसार स्कूलों, कालिजों, अस्पतालोंकी स्थापनाएँ कीं, मल्लशालाओंका निर्माण कराया, छात्रोंको छात्रवृत्तियाँ दीं और साथही वे अछूतोद्धारके अगुवाभी बने। धर्मान्तरमें प्रविष्ट हिन्दुओंका संस्कार कराकर उन्हें पुनः हिन्दू धर्ममें दीक्षित कराया। शताब्दियोंसे उपेक्षित, दलित, असभ्य, अशिक्षित आदिवासी, वनबासी जातियोंको हिन्दू धर्म, सभ्यतासे परिचित कराने, शिक्षित और सामाजिक बनानेकेलिए अद्वितीय प्रयास किये, करोड़ों रुपये व्यय किए। अक्लान्त भावसे जन-सेवाकी और जन-सेवी संस्थाओंको अनुदान तथा प्रेरणाएँ दीं। चीन, जापान, वाली, जावा, कम्बोदिया, मारीशस आदि देशों, द्वीपोंमें जहाँ हिन्दू, बौद्ध धर्मानुयायी बसते हैं, वहाँ प्रियदर्शी अशोक जैसा धर्म प्रचार किया। युरुप-अमेरिकाके जिज्ञासुओंको हिन्दू धर्म और भारतीय संस्कृतिका मर्म समझाया, उनकी भ्रान्तियाँ दूर कर उन्हें भारतके प्रति आस्थावान् बनाया। एक ओर वह स्वाध्याय, जप, तप, ध्यान, उपासना करते तो दूसरी ओर 'काम करनाही पूजा है'—इस आधुनिक नारेको भी स्वीकार कर वह कर्मरत रहे और मानवतावादका प्रचार किया। सारांश यह कि, उनकी धर्म-भावना आस्थावाद, युक्तिवाद और व्यवहारवाद पर आधारित रही।

स्वर्गीय बिरलाजीके धर्म-विषयक विचार संकीर्णताकी चहारदीवारीसे निकलकर उसे परिष्कृत, उदात्त और उदार रूपमें मुखर और सक्रिय करते रहे। उनके मस्तिष्क और कार्यकलापोंमें एक ऐसे सार्वभौम आर्य (हिन्दू)धर्म एवं समाजकी कल्पना थी, जिसमें सनातनधर्मी, आर्यसमाजी, बौद्ध, जैन, और सिक्ख सभीका समावेश था, सबका समान अधिकार था। उन्होंने सबको समेटकर, एकत्र कर, एक झण्डेके नीचे खड़े होकर, भारत राष्ट्रको सशक्त और स्वाधीन बनाये रखनेका शिव-संकल्प पूरा किया।

वह परम भागवत ईश्वरवादी व्यक्ति थे। आजीवन ईश्वर, मानव-मात्रके प्रति प्रेमसे ओत-प्रोत रहे और निश्चयही उन्होंने ईश्वरसे ऐकात्म्य साधनेके परम लक्ष्यको प्राप्त कर लिया था।

भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें ऐसेही सत्पुरुषकेलिए यह कहा है कि, 'सामान्य पुरुष जिस ऐन्द्रिय जगत्में जागरित रहते हैं, वह उसमें सुषुप्त रहता है और चैतन्यके जिस जगत्में

साधारण मनुष्य सोये रहते हैं, उसमें वह जागरित रहता है। वह कामना, अहंकार अथवा क्रोध-लोभसे दूर रहता है। 'स्व' और 'पर'की भावनासे मुक्त, सदा शान्त रहता है। वह मेरे प्रति अभिमुख हो मुझसे ऐकात्म्य प्राप्त करनेके योग्य वन जाता है। मुझमें आसक्त होकर तथा अपनी आत्मामें शान्ति प्राप्त करके वह सांसारिक पदार्थोंकेलिए न शोक करता है और न आकांक्षा करता है। सभी प्राणियोंको वह समान भावसे देखता है और मेरे प्रति सर्वोच्च प्रेमकी प्राप्ति करता है। इस प्रकारके प्रेमसे वह जान जाता है कि, मैं कौन हूँ। मेरा वास्तविक ज्ञान प्राप्त करके वह मुझमें जीता है और आवश्यक कर्म करता हुआ भी सदा मेरी शरणमें रहता है तथा कभी उसका विनाश नहीं होता। वह अपने सभी कर्मोंको मुझमें समर्पित कर और सर्वोच्च लक्ष्यकी प्राप्ति करके योगी वन जाता है और सर्वदा अपना ध्यान मुझपर केन्द्रित रखता है।'

श्रीविरलाजी अपने जीवन-वृत्त और कार्योंको प्रकट करनेके इच्छुक कभी नहीं रहे। आत्मगोपन उनका स्वभाव वन गया था। वास्तवमें आत्म-प्रशंसा, आत्म-विज्ञापनकी लालसा उन जैसे निःस्वार्थ, निष्काम भावापन्न व्यक्तिमें कभी उत्पन्नही नहीं हो सकती। उनमें 'स्व'का भाव तिरोहित हो चुका था। उन्होंने अपने 'स्व'को समग्र समाजमें बिखेर दिया था। उनमें इच्छाएँ थीं, कामनाएँ थीं, निर्माणकी योजनाएँ थीं। राष्ट्र और संसारके संघर्षों, नैतिक चेतनाके ह्राससे वे खिन्न और विचलित होते थे। किन्तु उनकी इच्छाएं, कामनाएँ, उनमें उत्पन्न हर्ष-विषाद आदि उनके अपनेलिए नहीं, वल्कि स्वदेश और समस्त संसारकेलिए थे। इसके साक्षी हैं उनके द्वारा बनवाये गए मन्दिर, धर्मशालाएँ और स्तूप, जिनमें उत्कीर्ण शिला-लेखोंमें उनके जीवनका ध्येय और लक्ष्य स्पष्ट पढ़ा जा सकता है। वह आर्य धर्म, आर्य-संस्कारोंको देशमें, संसार भरमें विस्तृत-वितत बनानेकेलिए आकुल-व्याकुल रहते थे। उनकी इस आकांक्षाके मूलमें चरित्र निर्माण, नैतिक विकासकी भावना निहित थी। वह समस्त संसारको सुखी, समृद्ध, शान्त, दान्त देखना चाहते थे। उनकी धारणा थी कि, धर्मही एक ऐसा माध्यम है, जो संसारको शान्ति, समृद्धि, सद्भाव प्रदान कर सकता है। उनका यह भी आग्रह था कि, केवल आर्य धर्म, सनातन धर्मही ऐसा धर्म है—जो ध्रुव सत्य है, कालातीत है, किसीका चलाया हुआ नहीं है और जिसमें व्यक्ति एवं समाजके स्वतन्त्र विकासका पूर्ण अवकाश है। इसलिए वह चाहते थे कि, आर्य (सनातन) धर्मी लोग आर्यत्वको, आर्य-चरित्रको विकसितकर संसार भरमें उसका प्रचार-प्रसार करें—विश्वको आर्य बनानेके लिए।

'आर्य' शब्दका अर्थ वह निरुक्तकार यास्क द्वारा बताये गए आर्यः ईश्वर पुत्रः— ग्रहण करते थे। ईश्वर-पुत्र वही है, जिसमें आत्मबल, चरित्रबल, नैतिकबल और ईश्वर-निष्ठा विद्यमान हो। समस्त विश्वको एक नीड़ रूपमें देखनेके वह अभिलाषी थे, इसलिए उनके धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रिय विचारोंको सीमित, संकीर्ण कहना, उन्हें सम्प्रदाय विशेषका समझना अविवेकपूर्ण निर्णय होगा।

श्रीविरलाजी ईश्वर-चेतना प्राप्त करनेमें सतत जागरूक रहे। लोभ, मोह, मद, भय,

क्रोधसे प्रेरित आकर्षणों और प्रभावोंसे उनका मन मुक्त हो चुका था। ईश्वरके प्रति उनका सब कुछ समर्पित था तथा आत्म प्रकाश पाना उनके जीवनका परम लक्ष्य था।

स्वामी दयानन्द सरस्वतीसे धर्म और समाजके संस्कारकी, स्वामी विवेकानन्दसे आध्यात्मिक राष्ट्रीय जागरणकी, महात्मागांधीसे सत्यके साक्षात्कारकी और महामना मालवीय जीसे चरित्रबल, निष्काम कर्मकी प्रेरणा प्राप्तकर श्रीजुगलकिशोरजीका उदात्त व्यक्तित्व निर्मित हुआ था। जीवनको कला मानकर उन्होंने उसकी साधनाकी थी। परोक्षतत्व ज्ञानके अनुसंधान-चक्रमें न फँसकर वह भारतीय जन-जीवनके दैनन्दिन कार्य-व्यापारोंमें आर्य-संस्कृति की चेतनाको प्रविष्ट कराना चाहते थे। धर्मके प्रति वह अन्धविश्वासी नहीं थे, योगकी चमत्कारिक प्रणालियोंके प्रति उनका आग्रह नहीं था। वह तो पौराणिक गाथाओं, शास्त्रीय आचारों, योगसिद्धियोंको जीवनकेलिए उपयोगी बनानेके समर्थक थे। वह राष्ट्रके खोये हुए व्यक्तित्वको लौटाने, जनताके प्रसुप्त भावोंको जगाने तथा संस्कृतिको नव-संयोजित करनेके लिए सतत प्रयत्नशील रहे।

वह उन्नतमना, उदारचेता व्यक्ति थे। हृदयकी दुर्बलतासे वह जितना मुक्त थे, उतनाही वह संशय-मुक्त थे। ईर्ष्या उनकेलिए अनजानी वस्तु थी। क्षुद्र उत्तेजनाओंमें उन्होंने जीवन नहीं जिया। दूसरोंकी गौरव-गरिमा उनकेलिए सबसे बड़ी आनन्ददायक होती थी। अधःपतनकारी महत्वाकांक्षासे उनकी अपनी विनम्रता सदा उनकी रक्षा करती रही। संयम और आत्मगोपन उनका विहित धर्म था। माया-मोहसे परे उनका जीवन आदर्श जीवन था। आदर्श अकस्मात् नहीं होते हैं, जन्म-जन्मान्तरकी साधनाओं, दीर्घ तपस्याओंके फल होते हैं। आदर्शोंकी निविड़ता, प्रखरताके अनुपातसे मानव-जीवन महान्, महानतर बना करता है। ऐसे व्यक्ति बहुत कम होते हैं जो एक विचार या आदर्शकेलिए जीते हैं। ऐसेही विरले व्यक्तियोंमें थे श्रीबिरलाजी जो अपने उच्चत्तम आदर्शोंसे पूर्ण पुरुष थे और एकमात्र आदर्श आर्य संस्कृतिकी रक्षा, अभिवृद्धिकेलिए जीवन समर्पित कर चुके थे। 'यतोधर्मस्ततो जयः' उनका जीवन-दर्शन था।

ऐसे पूर्ण पुरुषको उनकी प्रथम पुण्य-तिथि पर्वपर शतशः प्रणाम !

स्वर्गीय श्रीबिरलाजीका एक सिद्ध मंत्र

ब्रह्मलीन श्रीजुगलकिशोरजी बिरलाने अपनी तीव्र बुद्धि, कौशल और पुरुषार्थसे अपार धन उपार्जित किया था। किन्तु कदाचित्ही कुछ लोगोंको यह ज्ञात हो कि, उन्होंने अपने किस 'सिद्ध मंत्र'के द्वारा उस अपार धनका अर्जन किया ! उनका 'सिद्ध मंत्र' शास्त्रोंका मन्त्र नहीं, अपना व्यावहारिक और अनुभूत मन्त्र था। वे अपने निकट और संपर्कमें रहने वाले व्यवसायियोंसे कहा करते थे कि, व्यापारमें हानि कम, और लाभ अधिक प्राप्त करना चाहिए अर्थात् जब भी किसी वस्तुके भावमें, खरीदसे कुछ मन्दी हो तो उसे शीघ्र बेंच देना चाहिए। उस समय इस आशासे मौन होकर नहीं बैठना चाहिए कि, संभव है भाव फिर चढ़ जाय, और जब भाव चढ़ जायगा, फिर तब बेचेंगे। उनका कथन था कि, वस्तुको बेचनेके पश्चात् यदि भावमें वृद्धि हो जाय, तो फिर उस वस्तुको खरीद लेना चाहिए। इस प्रकार यदि दस बार भी व्यापारमें केवल 'कुछ' नुकसान होगा तो उसका व्यापारपर प्रभाव न पड़ेगा, और वह एक बारमेंही पूरा किया जा सकेगा।

मुरलीधर बंका

"मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि, हमारे नेतागण सत्ता-हस्तान्तरण से पूर्व (वैदिक) विधिसे ईश्वराराधन करलें। ऐसा तभी होगा, जब कल प्रात:काल कार्य-रत होनेके पहले ही नेताओंको तिलक लगाया जाय, माला पहिनायी जाय और उनसे अनुरोध किया जाय कि, वे भगवान्‌की पूजा-प्रार्थना करनेके उपरान्त ही शासन-सत्ता ग्रहण करें।"

ब्रह्मलीन श्रीजुगलकिशोरजी बिरलाके कुछ पावन संस्मरण

श्रीदेवधर शर्मा

ब्रिटिश शासनने भारतको स्वाधीनता प्रदान करनेकी घोषणा करदी थी। १४ अगस्त १९४७ की रातमें १२ बजकर १ मिनटपर अर्थात् अंग्रेजी तारीखके अनुसार १५ अगस्तको राजसत्ता प्राप्त होने वाली थी। सैकड़ों वर्षोंकी पराधीनताके पश्चात् भारतवर्ष सार्वभौम सत्ता-सम्पन्न राष्ट्र होने जा रहा था। अत: सारा देश उल्लसित था।

स्वर्गीय बाबूजी श्रीजुगलकिशोरजी बिरलाके उल्लासकी तो कोई सीमाही नहीं थी। उन्होंने अपने द्वारा निर्मित देशके समस्त देवालयोंको बन्दनवार-तोरणद्वारसे सजाने, विद्युत्प्रकाशसे जगमगाने और उनमें विशेष पूजा-प्रार्थना करनेकेलिए आदेश दे रक्खे थे।

वे १३ अगस्त १९४७ को प्रात:काल नित्य नियमानुसार नई दिल्ली स्थित श्रीलक्ष्मी-नारायण-मन्दिर (बिरला-मन्दिर)में पहुँचे और वहाँ दर्शन-पूजन एवं प्रार्थना करनेके उपरान्त गोस्वामी गणेशदत्तजीके पास गए। साथमें मैं (देवधर शर्मा) भी था।

श्रीबाबूजीने श्रीगोस्वामीजीसे कहा कि, 'कल भारत स्वतन्त्र होने जा रहा है। अत: मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि, हमारे नेतागण सत्ता-हस्तान्तरणसे पूर्व वैदिक विधिसे ईश्वरा-राधन करलें। ऐसा तभी होगा, जब कल प्रात:काल कार्य-रत होनेके पहलेही नेताओंको तिलक लगाया जाय, माला पहिनायी जाय और उनसे अनुरोध किया जाय कि, वे भगवान्‌की पूजा-प्रार्थना करनेके उपरान्तही शासन-सत्ता ग्रहण करें। यह काम आप और श्रीदेवधरजीही कर सकते हैं।'

श्रीगोस्वामीजी तथा मैंने श्रीबाबूजीका सुझाव सहर्ष स्वीकार किया और हम दोनों १४ अगस्त १९४७ को सूर्योदयके पूर्व निकलकर सबसे पहले सरदार पटेलके निवास-स्थानपर पहुंचे। उस समय सरदार पटेल स्नानादिसे निवृत होकर अपनी सुपुत्री मणिबैन पटेलके साथ कोठीके उद्यानमें भ्रमण कर रहे थे। सरदारने नतमस्तक होकर तिलक लगवाया, माला पहनी और श्रीवाबूजीको उनके सत्परामर्शकेलिए धन्यवाद देते हुए कहा कि, आपलोग राजेन्द्र वाबूसे मिल लीजिए और मेरा नाम लेकर कह दीजिए कि, वे पूजाके कार्यक्रमके निमित्त समय निर्धारित करलें।

हम दोनों सरदार पटेलकी कोठीसे निकलकर नेहरूजीके यहाँ गए तो वहाँ हमसे पहले ही कुछ लोग पहुंचकर शुभकामनाएँ प्रकट कर रहे थे। गोस्वामीजीको देखते ही नेहरूजी बोले—'आइये गुंसाईजी!' और उन्हें लेकर अन्दर कमरेमें चले गए। मैं चन्दन-माला लिये खड़ाही रह गया, किन्तु नेहरूजी तुरन्त लौटकर मेरे पास आगए, गोस्वामीजो भी उनके पीछे लगेहुए चले आये, यह कहतेहुए कि, 'यह मेरेही साथ हैं।'

नेहरूजीने मेरे कन्धेपर हाथ रखा और कहा कि, 'चलिए अन्दर, यहां क्यों खड़े हैं?' कमरेके अन्दर पहुंचकर हम दोनोंने नेहरूजीके माथेमें तिलक लगाया और पुष्पहार पहनाए। इसके वाद लगभग दस मिनट तक नेहरूजी पाकिस्तानसे आनेवाले विस्थापित हिन्दुओंके वारेमें चिन्ता प्रकट करते रहे। हमने उनसे अपना अभीष्ट कहना उचित न समझकर जल्दी-जल्दी विदा ली और राजेन्द्र वाबूके निवासस्थानकी ओर प्रस्थान किया।

राजेन्द्रबाबू पलंगपर तकियाके सहारे बैठे थे। उस समय उन्हें दमेका हल्का-हल्का दर्द हो रहा था। गोस्वामीजी और मैंने उनको आभ्युदयिक आशीर्वाद प्रदानकर तिलक लगाया और पुष्पहार पहनाये, फिर सरदार पटेलके सन्देशके रूपमें अपना और श्रीवाबूजीका अभीष्ट उनके समक्ष रखा। राजेन्द्रवाबूने सहर्ष कहा—'यह तो अवश्य होना चाहिए।' मैं नेहरूजीसे भी पूछे लेता हूँ।' उन्होंने फोन किया तो पता चला कि, वह किसी विदेशी अतिथि के स्वागतार्थ पालम हवाई अड्डेपर जानेकेलिए कोठीसे वाहर निकल चुके हैं।

राजेन्द्रवाबूने कुछ चौंककर कहा—'अरे, मुझे भी हवाई अड्डेपर जाना है, मैं तो भूल गया था।' फिर तैयार होतेहुए हमसे बोले कि, 'जितने आदमी धार्मिक कृत्य कराने आने वाले हों, सबके नाम लिखादें। मैं पास वनवाकर भिजवा दूंगा और नेहरूजीसे वहीं हवाई अड्डेपर बात कर लूंगा।'

वादमें मालूम हुआ कि, नेहरूजीने अस्वीकार तो नहीं किया, किंतु एक तर्क रखा कि, 'सार्वजनिक रूपसे हिन्दू धर्मके अनुसार पूजा करायी जायेगी तो मौलाना आजाद शायद स्वीकार न करें। इसलिए सरकारी कार्यक्रममें न रखकर व्यक्तिगत रूपसे हम लोग यह कृत्य कर लेंगे।' हमलोग अपने दलके साथ ठीक समयपर लोकसभा-भवनमें पहुंच गए और लगभग पौने बारह बजे वैदिक ऋचाओं द्वारा मांगलिक कृत्य करवाये गए, जिसमें सरदार पटेल, राजेन्द्रबाबू आदि हिन्दू मन्त्रियोंके साथ नेहरूजीने भी भाग लिया।

इस तरह श्रीबाबूजीके उद्योगसे स्वतन्त्रता-प्राप्तिके कुछ क्षण पूर्व हिन्दू-धर्मकी परम्पराका पालन हो गया।

× × × ×

महाप्रस्थानके कई वर्ष पूर्व श्रीबाबूजीका पैर फर्शपर अचानक फिसल गया। कूल्हेकी हड्डियां टूट गयीं। डाक्टरोंने पैरको सीधा करके उसपर भार बांधकर लटका दिया। श्रीबाबूजीको असह्य पीड़ा थी, फिरभी उनके अन्तर्मनसे भगवच्चिन्तन चल रहा था। डाक्टरोंने एक्सरे लिया और हड्डीकी स्थिति देखकर आपरेशनका निश्चय किया। किन्तु श्रीबाबूजी आपरेशन कराना नहीं चाहते थे। क्योंकि कुछ वर्ष पूर्व पौरुष-ग्रन्थिके आपरेशनका असीम कष्ट भोग चुके थे। उन्होंने रातमें सोते समय भगवान्से प्रार्थनाकी कि, 'या तो मुझे उठा लो या हड्डी ठीक कर दो।' और भगवान्ने कृपा करके दूसरी प्रार्थना सुन ली।

आधी रातकेबाद लगभग दो या तीन बजे एक तीन वर्षका सुन्दर, तेजोमय, नील-नीरदसी कान्तिवाला बालक बाहरसे उछलता हुआ श्रीबाबूजीके कमरेमें आया और उनकी शय्याके समीप खड़ा होकर पूछने लगा—'दादाजी, आपको बहुत दर्द हो रहा है? लाओ अभी ठीक किए देता हूँ।' यह कहकर उस दिव्य बालकने वंशी-सरीखी किसी वस्तुसे तीन बार उन-उन स्थानोंपर स्पर्श किया, जहाँ-जहाँकी हड्डी टूटी थी। तीनों बार 'चट-चट'की आवाज़ हुई और पीड़ा दूर हो गयी। श्रीबाबूजी वेदनाके कारण अर्द्धमूर्च्छित अवस्थामें थे। उन्हें कुछ भान तो हुआ, किन्तु यह समझकर कि, घरकाही कोई बालक होगा, कुछ बोले नहीं। जब तन्द्रा भंग हुई और यह अनुभव हुआ कि, पैरका दर्द वास्तवमें दूर हो गया है, तब उन्होंने आँख खोलकर इधर-उधर उस बालकको देखा और पुकारा कि कौन है? किन्तु वहाँ कोई बालक नहीं था। फिर श्रीबाबूजीको नींद नहीं आयी और वे गद्गद् भावसे भगवत्कृपाका चिन्तन करने लगे।

प्रातःकाल हुआ। डाक्टर बुलाये गए। उन्होंने दुबारा एक्सरे लिया तो हड्डियाँ जुड़ी हुई मिलीं। डाक्टर प्रसन्नतासे उछल पड़े। उन्होंने कहा कि, यह तो चमत्कार हो गया। किन्तु आत्मगोपनके धनी श्रीबाबूजीने रातकी घटनाके बारेमें किसीसे कुछ नहीं कहा। वे मुस्कराकर मौन हो गए।

कुछ दिनों बाद जब श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुरामें भगवद्-विग्रहकी स्थापनाकी बात सामने आयी, तब उन्होंने वह रहस्य मुझको बताया और यह आकांक्षा प्रकटकी कि, ठीक वैसाही विग्रह निर्मित कराया जाय। उनके बताये हुए स्वरूप, आकार और वयके अनुसार शिल्पियोंने दिल्लीमें विग्रह-निर्माण प्रारम्भ किया। बीच-बीचमें श्रीबाबूजी स्वयं देखते जाते थे और शिल्पियोंको मूर्तिका स्वरूप समझाते जाते थे। यद्यपि उनके मनोनुकूल विग्रह नहीं बन सका, फिर भी बहुत-कुछ सुन्दर बन गया और उसीकी स्थापना श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुराके मन्दिरमें हुई। तबसे जितनेभी दर्शक उस भगवद्-विग्रहके दर्शन करते हैं, भाव-

विभोर हो जाते हैं। उस विग्रहकी स्थापनाके बादसेही श्रीकृष्ण-जन्मस्थानका चतुर्दिक विकास हो रहा है।

एकवार श्रीबाबूजी जेठकी दुपहरीमें दिल्लीसे कार द्वारा पहुँचे। साथमें मैं भी था। श्रीबाबूजी मथुरा आनेपर कारसे उतरतेही पहिले गीता-मन्दिरमें दर्शन करते, फिर कोई दूसरा काम करते थे। उस दिन भी सबसे पहिले गीता-मन्दिरके मुख्य प्रवेशद्वारपर पहुँचे। यद्यपि उस समय मन्दिरका पट बन्द था, किन्तु उन्होंने देखा कि, पट खुले हुए हैं और दर्शन हो रहे हैं। उन्होंने वहाँसे प्रणाम किया और फिर मुझे कहा कि, 'उत्तर वाले द्वारकी ओर धूप नहीं है, उधरही जूते उतारकर भीतर चलेंगे।' इसके अनुसार जब उत्तर-द्वारसे मन्दिरके भीतर पहुँचे, तब पट बन्द मिला। उस समय दिनके एक बजे थे और मन्दिरका पट बारह बजेसे दो बजेतक बन्द रहता है। किन्तु श्रीबाबूजीको यह भ्रम हुआ कि, पहले असावधानीसे मन्दिरका पट खुला था, अब उनको देखकर नियमानुसार पट बन्द कर दिया गया है। श्रीबाबूजी कुछ खीझकर मुझसे बोले कि, जब पट खुला था, तब मुझे देखकर बन्द करनेकी क्या आवश्यकता थी? मैंने विश्वास दिलाया, पुजारी और कर्मचारियोंनेभी प्रार्थनाकी कि, मन्दिरका पट बारह बजे दिनमेंही बन्द कर दिया गया था। तब बाबूजी मौन हो गए और उन्होंने उसी अवस्थामें पुष्पांजलि समर्पित कर दी। चलते समय यह आज्ञा दे गए कि, 'भगवान्‌के विग्रहका चित्र उतारकर उनके पास शीघ्र भेज दिया जाय और तबसे गीतामन्दिर के शंख-चक्रधारी भगवान्‌की प्रतिच्छवि उनकी दैनिक पूजा-अर्चामें प्रतिष्ठित हो गयी।

× × × ×

गीता-मन्दिर, मथुरामें प्रत्येक पूर्णिमाको श्रीसत्यनारायणकी कथा होती है और प्रसाद-वितरण किया जाता है। एक दिन प्रसादकी पंजीरी कम पड़ गयी तो केले और बतासे मँगाकर बँटवाये गए। उन दिनों बाबूजी वाराणसीमें थे। उसी रात उन्हें स्वप्न हुआ कि, भोग कम लगा है। उन्होंने तुरन्त गीता-मन्दिरके पुजारी श्रीमदनमोहनजीको पत्र लिखा कि, 'भगवान्‌के भोगमें कमी क्यों की गयी है? किसके आदेशसे ऐसा हुआ?' पत्र पाकर श्रीमदनमोहनजी सन्न रह गये। उन्होंने उत्तर दिया कि, भगवान्‌के भोगमें किसी प्रकारकी न्यूनता नहीं है। किन्तु बाबूजीको सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने दिल्ली पहुँचकर मदनमोहनजीको बुलाया और फिर पूछा, तब श्रीमदनमोहनजीने स्वीकार किया कि, उसदिन पंजीरी घट गयी थी। बाबूजीने गम्भीर होकर कहा कि, 'भविष्यमें ऐसा नहीं होना चाहिये। प्रसाद अधिक बनवा लिया करो।'

× × × ×

जब महाप्रस्थानका समय आया, तब बाबूजीके नेत्र अपलक उधरही देख रहे थे, जहाँ सामने उनके आराध्य भगवान् श्रीकृष्णकी प्रतिच्छवि विराजमान थी। महीनोंसे शिथिल हुए हाथ अकस्मात् ऊपर उठे, श्रद्धांजलिकी मुद्रा बनी और जब प्रणाम निवेदित हो गया, तब उनके नश्वर देहका हंस अलौकिक आभा बिखेरता हुआ भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें विलीन हो गया।

स्वर्गीय विरलाजीकी अन्धकार-भेदिनी
दृष्टिपर विवेकपूर्ण प्रकाश

"रविबाबूने अपनी एक कवितामें लिखा है—'भगवान्ने समय-समयपर अपने दूत भेजे हैं। परन्तु हमने एक क्षुद्र नमस्कार देकर उन्हें दरवाजेसेही लौटाल दिया है।' श्री बिरलाजीके साथभी यही हुआ दीख पड़ता है।"

भविष्य द्रष्टा बिरलाजी

श्रीमाधव

पुराकालमें भूत, भविष्य, और वर्तमानके ज्ञाता त्रिकालज्ञकी सम्मानपूर्ण संज्ञाके अधिकारी होते थे।

आजकल ग्रन्थोंकी अपार संख्या और यातायात तथा संचारके साधनोंकी अति आधुनिक सुविधाके कारण भूत और वर्तमानकी जानकारी वैसी तपस्याकी अपेक्षा नहीं रखती, परन्तु भविष्यके अन्धकारका भेदनभी वही कर पाता है, जिसे विधातासे ऐसी शक्ति वरदानमें मिली होती है।

स्वर्गीय श्रीजुगलकिशोर बिरलाजीके जन्मलग्नमें स्वयं वृहस्पति विराजमान थे। इसीलिए व्यवसाय-वाणिज्यमें तो उनको सफलता मिलीही, समय-समयपर उन्होंने कुछ ऐसी भविष्यवाणियाँ भी कीं, जो सवा सोलह आने सत्य सिद्ध हुईं।

रुपयेकी कीमत हमारी सरकारने अभी कल घटायी है। परन्तु श्रीबिरलाजी सन् ४६ से कहते आ रहे थे कि, रुपयेका मूल्य घट जायेगा। लक्ष्मीपुत्रोंको वे परामर्श भी देते थे कि, 'जो रुपया तुम जमा कर रहे हो, वह रहनेवाला नहीं है, शुभ कार्योंमें लगाकर इसका लाभ उठा लो।'

नागालैण्डकी समस्या अपने वास्तविक स्वरूपमें अब हमारे सामने आयी है। परन्तु श्रीबिरलाजी सन् ५४ से कह रहे थे कि, इसकी जड़में ईसाई पादरी और उनकी पीठपर विदेशी हाथ हैं। राष्ट्रपतितकको उन्होंने चेतावनी दी थी कि, ''सरकार सतर्क न हुई, तो जैसे पाकिस्तान बन गया है, वैसेही पुण्यभूमि भारतमें ईसाईस्तान भी बन जायेंगे।'

केन्द्रीय शक्तिको सुदृढ़ रखनेकी चिन्ता अब प्रकट हुई है। परन्तु श्रीबिरलाजीने

सन् १९४८ में ट्रावनकोरके तत्कालीन दीवान सर सी० पी० रामस्वामी अय्यरको जो पत्र लिखा था, उसमें केन्द्रीय सरकारको शक्ति-सम्पन्न करनेकी आवश्यकतापर बल दिया था। केन्द्रीय सरकारकी नीतिको हिन्दुओंके प्रतिकूल समझतेहुएभी देशकी आधारभूत आवश्यकताको सामने रखकर वह बात उन्होंने कह दी थी, जो हमारे नेताओंने प्रान्तीय और क्षेत्रीय भावनाओंको प्रबल होते देखकर अब कही है।

नये हिन्दू विवाह-कानूनके हानि-लाभका लेखा-जोखा हमने अभी तक नहीं किया, जबकि श्रीबिरलाजीने संसदमें हिन्दू-कोड-बिलपर विचारके समयही कह दिया था कि, 'यह अनावश्यक है और इससे हिन्दू-समाजमें असन्तोष बढ़ेगा। कोड-बिलके कानून बन जानेसे जो लाभ हुए हैं, उनका ब्योरा हमारे मित्रगण यथासमय प्रस्तुत करेंगे। परन्तु एक बड़ी हानि यह हो गयी है कि, कितनी देवियोंने अपने पतियोंका परित्याग कर दिया है और अपने मातृ-सदनमें स्थायीरूपसे निवास करने लगी हैं। यह पग उठानेके पहले या उसके बाद उन्होंने अपने पतिकी गरदनसे अपना बोझ कानूनी रूपसे उतार लेनेकी कृपा भी नहीं की और इस डोलमें ताक लगाए बैठी हैं कि, उनका पति दूसरा विवाह करे तो वे अदालतमें उपस्थित होकर गुजारेकी माँग कर दें। कई क्षेत्रोंमें कानूनका रोजगार करने वालोंसे उन्हें ऐसाही परामर्श मिला है। ऐसी देवियोंके पति न्यायालयसे तलाक प्राप्त किए बिना दूसरा विवाह करते हैं तो सात वर्षकेलिए कारावासमें भेजे जा सकते हैं। न्यायालयसे तलाक प्राप्त करना कोई आसान काम नहीं है। हिन्दू-समाज अभीतक इतना एडवांस नहीं हो पाया कि, अपने घरके कपड़े चौराहेपर धोने बैठ जाय। समाजमें इस स्थितिसे जो वातावरण बन रहा है, उसे सदाचारका पोषक नहीं कह सकते।' परन्तु हमारे नेताओं और संसद-सदस्योंका ध्यान अभीतक इस दिशामें आकर्षित नहीं हुआ, जबकि श्रीबिरलाजीने हिन्दू-कोड-बिलकी इस धाराका विशेष रूपसे विरोध किया था कि, एक पत्नीकी उपस्थितिमें पुरुष दूसरा विवाह नहीं कर सकता। कहना न होगा कि, इसी धाराने यह विषमावस्था उत्पन्न की है।

शेखअब्दुल्लाके रूप-स्वरूपकी चर्चा अब उग्र हुई या कह लीजिए कि, सन् ५१ से उभरी है। परन्तु श्रीबिरलाजीने विभाजनसेभी कई वर्ष पहले कह दिया था कि, 'शेखसाहब यद्यपि मुस्लिम लीगकी पाकिस्तानवाली माँगसे पृथक हैं, परन्तु उनका उद्देश्य कश्मीर-नरेशको गद्दीसे उतारकर रियासतको पाकिस्तानका अंग बना देनाही है।'

श्रीबिरलाजीने ये विचार शेख साहबके उस आन्दोलनपर प्रकट किए थे, जो उन्होंने कश्मीर-नरेशके विरुद्ध प्रारम्भ किया था। उस आन्दोलनका आधारभी रियासतकी जनताके लिए आत्मनिर्णयाधिकारकी माँग था। कश्मीर-नरेश अब गद्दीपर नहीं हैं और रियासत का प्रशासन जनताके हाथमें आ गया है, अर्थात् शेख साहबकी माँग पूरी हो गयी है। परन्तु उनका अद्भुत आत्मनिर्णयाधिकार अबतक भुतहै बाँसकी तरह खड़ा है और वे भारतको कश्मीरपर जबरदस्ती कब्जा करनेका अपराधी ठहरा रहे हैं और चाहतेहैं कि, भारत और पाकिस्तान दूध-शक्कर हो जाँय।

अपने उन शब्दोंमें शेखसाहबने कश्मीरको पाकिस्तानमें मिलानेकी बात साफ तौरपर नहीं कही। लेकिन पाकिस्तानी पत्रोंके अनुसार शेखसाहबके दाहिने हाथ, मिर्जा अफजल बेगने लगी-लिपटी भी नहीं रक्खी। मिर्जा साहबने साफ शब्दोंमें कह दिया है कि, 'कश्मीरी-कश्मीरको लाजिमी मजलूम समझते हैं। कश्मीरकी इक्तसादी (आर्थिक) तरक्कीकेलिए पाकिस्तानके साथ रियासतका इलहाक (सम्मिलन) जरूरी है।' (दैनिक 'मशरिक' कराँची, १० मार्च १९६८ और दैनिक 'शाहेहरम' पेशावर, ८ मार्च १९६८)।

कहा जासकता है कि, मिर्जासाहबके ये शब्द पाकी पत्रोंमें छपे हैं। अतः पक्षपात-दुष्ट भी हो सकते हैं। परन्तु मिर्जासाहबने इनका खण्डन करनेकी जरूरत महसूस नहीं की।

पाकिस्तानके सन्दर्भमें ३० मई सन् १९४७ के दिन श्रीबिरलाजीने तत्कालीन वायसराय लार्ड माउन्टबैटनको लिखा था :—

"यदि पाकिस्तान सार्वभौम सत्ता-सम्पन्न राष्ट्र बन जाता है और भारतकी केन्द्रीय सत्तासे स्वतन्त्र हो जाता है, तो वह विश्वव्यापी इस्लामी विस्तारवादको बढ़ावा देगा और भारतकेलिएही नहीं, इंगलैण्ड और विश्वशान्तिकेलिए भी खतरा बन जायेगा।"

अब पाकिस्तानके किसी नेताका बयान सुनिए या वहाँका कोई अखबार पढ़िए—वह दुनियाके सत्तर करोड़ मुसलमानोंको एक झण्डेके नीचे जमा हो जानेका सन्देश देता मिलेगा। अफगानिस्तान, ईरान, तुर्की, ईराक और मिश्र आदि पुराने इस्लामी देश जहाँ अपनी राष्ट्रीयता और प्राचीन विभूतियोंपर गर्व करते हैं, वहाँ पाकिस्तान राष्ट्रीयताको लानत भेजता है और भौगोलिक सीमाओंको निरर्थक बताता है। अपना इतिहास वह ऐसा पेश करता है, जैसे कुकुरमुत्तेकी तरह रातोरात ज़मीन फोड़कर पैदा हो गया है। यह कहते हुए उसे शर्म आती है कि, "कलतक वह भारतका अंग था। भारतका इतिहासही उसका इतिहास है और हड़प्पा, मोहनजोदड़ो तथा तक्षशिला आदि उसकी प्राचीन संस्कृतिके निदर्शन हैं।"

इस्लामी विश्वका महानारा पाकिस्तान इसलिए नहीं लगाता कि, उसे इस्लामसे कोई बड़ा प्रेम है। पाकिस्तानके इस्लामी नेताओंकी यह शिकायत गलत नहीं है कि, पाकिस्तानके पश्चिम-परस्त शासकोंने पाकिस्तानको योरोप और अमरीकाका एक ऐसा टुकड़ा बना दिया है, जिसमें इस्लामका सिर्फ नाम लिया जाता है। वास्तविकता यह है कि, उसी नारेकी बदौलत पश्चिमी पाकिस्तान पूर्वी पाकिस्तानका शोषण कर रहा है और पंजाबी मुसलमान सीमाप्रान्त, सिन्ध, और बलूचिस्तानको ठग रहे हैं। इसी नारेकी बदौलत पाकिस्तान कश्मीरी और भारतीय मुसलमानोंका ठेकेदार बन रहा है और फारसकी खाड़ी तथा मारीशस आदिमें भारतसे लड़नेकी तैयारी कर रहा है। इसी नारेकी बदौलत वह संसारके सब मुसलमानों का नेता बनना चाहता है। इसीलिये आए दिन एलान करता है कि, पाकिस्तान दुनियाका सबसे बड़ा इस्लामी मुल्क है।

'इकबाल'ने जब समस्त संसारको मुसलमानका वतन कहा था, तब उनके मनमें

चाहे जो भावना रही हो, पाकिस्तानी शासकोंने इस नारेको अपनी स्वार्थ-सिद्धिका ही साधन बनाया है। किसी राष्ट्रके स्वार्थ जब इतने बड़े और गहरे हो जाँय, तब वह किसीको भी चैनसे बैठने नहीं दे सकता। कैसर और हिटलरकी महत्वाकांक्षाएँ ही, कहा जाता है, दो बार विश्वको युद्धकी कराल लपटोंमें झोंक चुकी हैं। थोड़ी देरकेलिए इस तर्कको एक तरफ रख दिया जाय तो पाकिस्तान अपने जन्मकालसे भारत और अफगानिस्तानकेलिए सिरदर्दबना हुआ है। अफगानिस्तानसे एकबार और भारतसे तीन बार उसकी लड़ाई हो चुकी है। फिलहाल वह ब्रिटेन और अमरीकाके इशारोंपर समझा जाता है। चीनसे दोस्ती भी ब्रिटेनके संकेतों पर ही हुई बतायी जाती है। लेकिन उसने रूससे भी साँठ-गाँठ शुरू की है और आजकल वहाँ साम्यवादी नारोंका बड़ा जोर है। हो सकता है कि, कल वह ब्रिटेन और अमरीकाको भी अँगूठा दिखा दे। लार्डमाउन्टबेटनको तो वह १५ अगस्त ४७ से ही अपना शत्रु कहता चला आ रहा है।

श्रीबिरलाजीकी भविष्यवाणीको सत्य सिद्ध करनेवाली पाकिस्तानकी यह मति-गति देखकर विश्वके कुछ राजनीतिज्ञोंने भारत और पाकिस्तानकी संयुक्त सुरक्षा-व्यवस्थाका सुझाव दिया था। आजकलभी अमरीका जैसे कनफेडरेशनकी चर्चा सुन पड़ती है। श्रीबिरला जीने अपने इसी पत्रमें लार्डमाउन्टबेटनको सुझाव दिया था कि, "मुस्लिमलीगकी माँग मानी ही जाय तो वैदेशिक नीति तथा संचार और सुरक्षा-व्यवस्था एक केन्द्रमेंही रहे।' भारतके लिए यह व्यवस्था आर्थिक दृष्टिसे घाटेकाही सौदा थी और श्रीबिरलाजीकी नीतिके प्रतिकूल पड़ती थी। फिरभी उन्होंने व्यापक हितोंको सामने रखकर ऐसा सुझाव दे दिया था।

श्रीबिरलाजीके विचारों और क्रियाकलापोंका सम्यक् अध्ययन किया जाय तो भविष्य में सत्य सिद्ध होनेवाली उनकी वाणियोंके ऐसे अनेक उदाहरणभी मिल सकते हैं और बता सकते हैं कि, उनकी दृष्टि कितनी गहरी, पैनी और दूरगामिनी थी। परन्तु हमने उस दृष्टिका मूल्यांकन नहीं किया, उससे लाभ नहीं उठाया। रविबाबूने अपनी एक कवितामें लिखा है कि,—"भगवान्ने समय-समयपर अपने दूत भेजे हैं। परन्तु हमने एक क्षुद्र नमस्कार देकर उन्हें दरवाजेसेही लौटा दिया है।" श्रीबिरलाजीके साथभी यही हुआ दीख पड़ता है। परन्तु मौका बिल्कुल निकल नहीं गया—उनके विचारों, संकेतों और क्रिया-कलापोंमें ऐसा बहुत-कुछ है, जो आज भी राह दिखा सकता है और अँधेरेको उजालेमें बदल सकता है। भगवान् हमें उसका अध्ययन और मनन करनेके बाद उसपर अमल करनेकी सुबुद्धि एवं शक्ति प्रदान करें।

अखिल ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी जड़-चेतन-स्वरूप जगत् है, वह ईश्वरसे व्याप्त है। उस ईश्वरके प्रकाशसे (सहायतासे) त्यागपूर्वक इसे भोगते रहो, इसमें आसक्त मत हो क्योंकि धन-ऐश्वर्य किसका है अर्थात् किसीका भी नहीं है।

प्राणोंके स्वरसे गुंजित एक सुप्रसिद्ध संतके
निजी पत्रोंकी कुछ दुर्लभ झांकियाँ

"विवेकशील पुरुषके लिए भी पैसेका मूल्य समझना खेदकी बात है।............यह तो तुम विवेकसे कभी समझ ही नहीं सकते कि, पैसेसे मनुष्यके दुःख आत्यंतिक रूपसे दूर हो सकते हैं। इसके विरुद्ध आज तकका इतिहास, संतोंकी वाणी और अपने अनुभव से भी यही सिद्ध होता है—पैसा परमार्थमें प्रायः बाधक होता है।"

एक सुप्रसिद्ध संतकी पत्र मंजूषाके अनमोल रत्न

[भगवान् श्रीकृष्णकी अनुकम्पासे ही एक सुप्रसिद्ध संत, उदारहृदय और अनुभवी तथा विवेकशील महानुपुरुषके कुछ पत्र हम तक पहुँच गये हैं। यह पत्र पत्र नहीं, जीवनकी अतल गहराईकेलिये सुदृढ़ सोपान हैं। पाठक, आप स्वयं इन्हें देखें और आपमें से जो, इनकी सहायतासे जीवनकी अतल गहराई में उतर कर सत्यका पुनीत दर्शन करना चाहें, करें। सं०]

धनमें मादकता होती है

यद्यपि आजका युगधर्म पैसा हो रहा है, शुद्ध परमार्थको छोड़कर शेष हर एक क्षेत्रमें आज पैसेका सम्मान है, इसको देख-सुनकर पैसेवाला बननेकी स्पृहा साधारणतः जाग्रत होना कोई अचरजकी बात नहीं है। परन्तु...............विवेकशील पुरुषकेलिये भी पैसेका मूल्य समझना खेदकी बात है।...............यह तो तुम विवेकसे कभी समझ ही नहीं सकते कि, पैसेसे मनुष्यके दुःख आत्यन्तिक रूपसे दूर हो सकते हैं। इसके विरुद्ध आजतकका इतिहास, संतोंकी वाणी और अपने अनुभवसे भी यही सिद्ध होता है—पैसा परमार्थमें प्रायः बाधक होता है।

धनमें एक तरहकी मादकता होती है, जो मनुष्यको साधनसे गिरा देती है। उसके सामने ऐसे-ऐसे प्रपंच आ जाते हैं, ऐसा वातावरण बन जाता है, जिससे बरबस उसे परमार्थसे हटना पड़ता है और उसे अपनी भूल उस अवस्थामें प्रायः मालूम भी नहीं पड़ती।

असली धन

संभव है, तुम दस-बीस लाख या करोड़ों रुपये कमा लो, परन्तु उससे तुम्हारी असली स्थितिमें क्या उन्नति होगी ? समता, ईश्वर-परायणता, वैराग्य, सत्य पर दृढ़ता, निरभिमानता, क्षमा, यथार्थ नम्रता आदि सद्गुण ही मनुष्यको ऊँचा उठानेवाले हैं और ये ही उच्चताके लक्षण हैं। मनुष्य सब प्रकारकी सांसारिक स्थितिमें दीन-हीन हो, रोटीके टुकड़ेका भी अभाव हो, अपमानित हो, कोई पूछनेवाला न हो, साथी-संगी-सहायक, अपना या आश्रयदाता कोई न हो, शरीर भी रोगी रहता हो—यह सब कुछ होने पर भी यदि वह अवगुणोंसे रहित और उपर्युक्त गुणोंसे युक्त है, तो वही परमश्रेष्ठ है। इसके विपरीत मान, धन, पद, प्रतिष्ठा, नीरोगता आदि खूब हों, परन्तु उपर्युक्त सद्गुणोंका अभाव हो तो वह किसी कामका नहीं।

मनुष्यका मूल्य.......???

झंझटोंसे मुक्ति मनुष्य चाहता कहाँ है ? वह तो नये-नये झंझट मोल लेना चाहता है और चाहता है कि, सब लोग हमारे अनुकूल हो जाँय। आजके राग-द्वेषभरे युगमें तो यह सर्वथा ही व्यर्थ आशा है। आपको यदि इन सब अड़ङ्गोंसे दूर रहना हो तो साहस करके थोड़ी बहुत मानकी कमीका सामना करनेकेलिए तैयार होकर सब छोड़ देना चाहिये। जबतक चीलकी चोंचमें मांसका टुकड़ा है, तभीतक कौवे उसके पीछे-पीछे उड़कर हैरान करते हैं। टुकड़ा फेंका कि, फिर वह पेड़की डालपर आरामसे बैठ सकती है। कोई उसे सतावेगा नहीं। लोग तो टुकड़ेके पीछे दौड़ते हैं, आदमीके पीछे नहीं।

सबसे आवश्यक कार्य

भगवान्के भजन करनेकी बात भाग्यवानोंसे बनती है। इसका अर्थ यह नहीं मानना चाहिये कि, जिनके पहलेके अच्छे भाग्य हों, वे ही भजन कर सकते हैं। भजनमें प्रारब्ध प्रधान हेतु नहीं है। यह अवश्य है कि, जो भजन करते हैं, वे ही भाग्यवान् हैं। रुपये-पैसे, धन-दौलत और पद-अधिकारवाले भाग्यवान् नहीं और इस भाग्यकी प्राप्तिका अधिकार सभीको है। भजन जो चाहे वही कर सकता है, लगन होनी चाहिए और मानव-जीवनका यही सबसे बड़ा और अत्यावश्यक कार्य है।

अभी उस दिन प्लेन-दुर्घटनामें अच्छे-अच्छे आदमी क्षणोंमें मर गये। न मालूम उनके क्या-क्या मनसूबे थे। यही हाल हम सब लोगोंका होनेवाला है।

दृढ़ निश्चय कीजिये

श्रीकृष्ण सर्वत्र हैं।
श्रीकृष्ण सर्वसमर्थ हैं।
श्रीकृष्ण सर्वज्ञ, सर्वविद् हैं।
श्रीकृष्ण सर्वसुहृद हैं।

(१) भगवान् सर्वत्र हैं। वे नित्य-निरन्तर सभी जगह मेरे साथ ही हैं।

(२) भगवान् अनन्त, अपरिसीम, असमोद्धर्व सामर्थ्यवान् हैं। वे असम्भवको भी तुरन्त सम्भव कर सकते हैं। उनके लिये असम्भव कोई वस्तु है ही नहीं।

(३) अनन्त विश्व-ब्रह्माण्डमें अनादिकालसे इस क्षणतक कहाँ, कब, क्या, कैसे हो चुका है, अभी इस क्षण कहाँ, क्या, कब, कैसे हो रहा है और आगे अनन्त कालतक कहां, कब, क्या, कैसे होगा—इसे वे अभी प्रत्यक्ष रूपसे जान रहे हैं। उनकेलिये सब कुछ वर्तमान है। भूतकाल, भविष्यकाल उनके लिए नहीं है। अतएव वे मेरे मनकी स्थितिको, मुझसे सम्बद्ध सभी कुछ को निरन्तर जान रहे हैं।

(४) भगवान् सर्वसुहृद् हैं। मेरे परम मित्र हैं, उनके हृदयमें मेरे लिए अनन्त, अपरिमित प्यारका समुद्र नित्य-निरन्तर लहरा रहा है।

आज इस क्षणमें निश्चय कर रहा हूँ कि, उपर्युक्त चारों भावोंको अपने मनमें पूर्णरूपसे प्रतिष्ठित करनेका प्रयास करूँगा, और भगवान्की कृपासे यह अवश्य होगा, होगा, होगा।

भगवत्कृपाकी पहचान

घर में अपार धन गड़ा है, परन्तु जब तक हमें उसका पता नहीं है, तबतक हम दरिद्र ही हैं। पता लगनेके साथ ही हम धनी हो जाते हैं, चाहे उस धनको गड़ा ही रहने दें, क्योंकि अब तो वह हमारा ही है। और—

(१) जबतक हमारे अन्दर रागद्वेषादि, आसक्ति कामनादि दोष हैं,
(२) जबतक अनायास ही प्रेमपूर्वक भगवान्का भजन नहीं होता,
(३) जबतक चित्तमें जरा भी क्षोभ और विषाद है,
(४) जबतक भगवान् ही हमारे एकमात्र आकर्षण, ममत्व और निजत्व की वस्तु नहीं बनजाते, तबतक यही समझना चाहिये कि, हमने अपने ऊपर नित्य निरन्तर बरसनेवाली भगवत्कृपाको पहचाना नहीं। भगवत्कृपाको पहचाननेका साधन भी भगवत्कृपा है।

मनुष्यकी कृपा·······???

किसी मनुष्यकी कृपा-अकृपासे क्या होता है, कृपा करके वह क्या कर सकता है, जो स्वयं ही दूसरेकी कृपाका भिखारी है और उसकी अकृपा भी किसीका क्या बिगाड़ सकती है, यदि भगवान् सहायक होते हैं। हाँ, भगवान्की कृपासे सब कुछ हो सकता है—संभव भी असंभव और असंभव भी संभव हो जाता है।

संसार—एक रैन बसेरा

संयोग-वियोगमें सुख-दुख नहीं करना चाहिए। भगवान्का वियोग तो कभी होता ही नहीं। शरीर तथा संसारके पदार्थ सब वियोगशील हैं। इनसे सदा संयोग रह ही नहीं

सकता। एक पेड़ पर शामको बहुत पक्षी आकर बैठते हैं, सवेरा होतेही अपने अपने स्थानपर उड़ जाते हैं। या एक धर्मशालामें बहुत मुसाफिर ठहरते हैं। फिर सब अपने-अपने गंतव्य स्थानपर चले जाते हैं। यही दशा इस संसारकी और घरकी है। यही समझकर सदा प्रसन्न रहना चाहिए। कभी खिन्न नहीं होना चाहिए।

असफलताका साथी कौन ?

हम जिन्हें यहाँ पर अपना संगी समझते हैं, उनमें प्राय: अधिकांश हमारी सफलतापर ही हमारा साथ देते हैं, असफलताकी स्थितिमें विरले ही सहानुभूतिके साथ हमारी सहायता कर पाते हैं। सच्ची बात यह है कि, श्रीभगवान्के अतिरिक्त मनुष्योंमें ऐसी सामर्थ्य ही क्या है, जो किसीका दु:ख बँटा सके। हम दुनियाके लोगोंकी आशा-प्रत्याशा करते हैं, यही हमारी भूल है।

हम आस्तिक भी हैं कि नहीं ?

आस्तिकताकी नींव, अर्थात् श्रीकृष्ण तो हैं ही, इस बातका विश्वास कितनी गहराईसे मेरे मनमें स्थान पाये हुए है, इसपर भी विचार प्रत्येक साधक-साधिकाको अवश्य करते रहना चाहिए। परमार्थकी साधना जितनी देर तुम उपासना-मन्दिरमें बैठकर करतेहो—वह तो उत्तम है ही, किन्तु जीवनका प्रत्येक क्षण जब तक साधनामय नहीं बन जाता, तब तक साधना अधूरीही चलती है। इसलिए व्यवहार जगत्में उतरनेपर भी सावधानीसे मनका विश्लेपण करके आस्तिकताकी नींवको—श्रीकृष्णके अस्तित्वमें विश्वासकी भावनाको—तुम्हें निरन्तर सुपुष्ट बनाते रहना चाहिए।

देखो भैया, जो सचमुच श्रीकृष्णसे तादात्म्य-लाभ कर लेते हैं अथवा जो प्रभुकी चिन्मयी गोदमें लाड़िले शिशुकी भाँति निरन्तर खेलते रहते हैं, उनके कण-कणमें यह बातें निरन्तर अभिव्यक्त रहती हैं :—

स्वप्नमें भी किसी भी प्रतिकूलताकी प्राप्ति होकर उन्हें रंचमात्र भी शोक नहीं होता और यदि शोक होता है, तो समझ लेना चाहिए कि अभी वे आस्तिककी श्रेणीमें नहीं हैं, नहीं हैं। उनकी आँख अभी नहीं खुली है। वे अभी अन्धे हैं, अन्धे हैं अथवा अन्धी हैं, अन्धी हैं, अन्धी हैं। और यह कहना कठिन है कि उनकी आस्तिकताकी नींव नापनेपर कितनी गहराईमें मिलेगी, कितनी सुपुष्ट मिलेगी ?



चाह कृपाकी तेरी

तरस रही अँखियाँ देखन कौं दरसन कबहूँ न दीन्हे।
अब आवेंगे, अब दीखेंगे, आशा उरमें लीन्हे॥
देखत रहूँ बाट हौं निसिदिन प्यारे! छिन-छिन तेरी।
सुखदायिनी प्रतीक्षाकी यह वृत्ति रहे नित मेरी॥



जीवनके चरमलक्ष्य-परमात्माकी प्राप्तिका
रहस्योद्‌घाटन

"सर्व प्रथम यह निर्णय करना होगा कि, अनन्तकालसे प्रारम्भ हमारी जीवन-यात्राका गन्तव्य स्थान क्या है? साथ ही वह ऐसा होना चाहिये, जहाँ पहुँचकर हमें अनन्त विश्राम प्राप्त हो........। ऐसा स्थान खोजनेपर तो भगवान्‌के शब्दों में भगवान् ही हैं।"

जीवनका लक्ष्य और उसकी प्राप्ति

अनन्तश्री विभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगत्‌गुरु शंकराचार्य
स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज

सबसे प्रथम मानवको अपने जीवनका लक्ष्य निश्चित् करना चाहिए। जबतक यह निश्चित् न होगा, तबतक उसकी कोई क्रिया सफल न होगी। जिसने अपने गन्तव्य स्थानका निश्चय नहीं किया, वह सतत चलकर कहाँ पहुँचेगा, यह वह भी नहीं कह सकता! अतः सर्व प्रथम यह निर्णय करना होगा कि, अनन्तकालसे प्रारम्भ हमारी जीवन-यात्राका गन्तव्य स्थान क्या है? साथही वह ऐसा होना चाहिए, जहाँ पहुँचकर हमें अनन्त विश्राम प्राप्त हो तथा फिर कभी चलनेका प्रयासही न करना पड़े। ऐसा स्थान खोजनेपर तो भगवान्‌के शब्दों में भगवान्‌ही हैं, दूसरा कोई नहीं। भगवान् कहते हैं कि, मुझ सच्चिदानन्द परमात्माको प्राप्तकर प्राणी परम सिद्धिको प्राप्त कर लेता है। तब वह अनित्य और दुःखरूप जन्मको फिर प्राप्त नहीं करता अर्थात् इस अवस्थामें अनन्तकालसे प्रारम्भ की गई उसकी जन्म-मरण रूप यात्रा समाप्त हो जाती है :—

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमागताः॥

श्रीमद्‌भागवतका भी कथन है कि, यही बुद्धिमानोंकी बुद्धि तथा मनीषियोंकी सद्‌विवेकिनी मनीषा है कि, अनृत एवं मरणशील शरीरसे मुझ सत्य और अमृतको प्राप्त करलें—

एषाबुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम्।
यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति माऽमृतम्॥

अतः शास्त्रों एवं सत्पुरुषोंके आचरणसे यही सिद्ध होता है कि, मानव जीवनका एक मात्र लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है।

अब उन्हीं शास्त्रोंसे उसकी प्राप्तिका उपाय भी जानना चाहिए। भगवान्‌की प्राप्ति में देहात्मवाद सबसे बड़ा घातक है। देहात्मवादका अर्थ है देहहींको आत्मा मान लेना और उसीके सुख-दुःखमें अपनेको सुखी-दुःखी मानना। इसलिए शास्त्र देहसे ममता दूर करने केलिए कहते हैं। जीवनके सत्य लक्ष्यको प्राप्ति करनेवालोंकेलिए उचित है कि, वे शरीरमें जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि आदि दुःख एवं दोषोंका दर्शन करें—

जन्म, मृत्यु, जरा व्याधि दुःखदोषानुदर्शनम्।

इससे उनकी देहात्मवाद सम्बन्धी बुद्धि निराश होगी। देहात्मवादके प्रति निराशा होनेपर जब वे अशरीरावस्थामें आजायेंगे तो उन्हें प्रिय-अप्रिय, अर्थात् सुख-दुःखका भास नहीं होगा।

अशरीरं वा वसन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः।

इसकेलिए सर्वप्रथम चित्तको जीतना पड़ेगा। चित्तके वशमें न होनेवालोंकी बड़ी महत्ता बताई गई है—

एतावति धरणीतले सुभगास्ते साधुचेतनाः पुरुषाः।
पुरुष कथासु च गण्या न जिता ये चेतसा स्वेन॥

इस धरणीतलपर वे पुरुष सौभाग्यशाली और सचेतस्क हैं, तथा उन्हीं सत्पुरुषोंकी कथाओंमें गणना होती है, जो अपने चित्तसे न जीते गए हों अर्थात् जिनका चित्त वशमें है। वस्तुतः बिना चित्तको वशमें किए कोई एहलौकिक किंवा पारलौकिक कार्य सम्यक् सिद्ध नहीं हो सकता।

शास्त्र तो वानर और नरमें भी यही भेद बताते हैं। मन जहाँ लेजाय वहाँ जानेवाले अर्थात् मनके पराधीन रहनेवाले वानर और मनको वशमें करके बुद्धिके द्वारा विचार करने वाले नर हैं—

मनांसि यत्र गच्छन्ति तत्र गच्छन्ति वानराः।
बुद्धयो यत्र गच्छन्ति तत्र गच्छन्ति वै नराः॥

संसार चक्रका प्रवर्तक एकमात्र चित्तही है। इसीपर मायाका प्रभाव पड़ता है—

चित्तं नाभि किलास्येदं मायाचक्रस्य सर्वतः।
स्थीयते चेत्तदा क्रम्यं तन्न किंचित् प्रबाधते॥

इस माया चक्रकी नाभि (मध्यदेश) चित्त है, उसे दबाकर रहनेवालोंपर अर्थात् उसको वशमें रखनेवालोंपर मायाचक्रका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतः जीवनके लक्ष्यकी प्राप्तिकेलिए मानवको सब प्रकारसे चित्तपर अधिकार प्राप्त करना चाहिए। अदृष्टसे दृष्टका निर्माण होता है। अन्ततः पुण्य पाप अदृष्टही हैं, उन्हींसे दृष्ट शरीर बनता है। प्राणियोंके

अदृष्टसेही क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर-ये पाँचों मिलकर सृष्टिके रूपमें परिणत होजाते हैं। जैसे, स्वर्णकार बनेहुए कनक कुण्डलोंको तोड़कर स्वर्णको अन्य आभूषणोंके रूपमें परिणत करदेता है, वैसेही मानवके पुण्य पाप-कर्मोंके वश स्थूल शरीर अन्य-अन्य शरीरोंके रूपमें परिणत होते रहते हैं। स्थूल शरीरमें कर्तृत्व-भोक्तृत्वाभिनिवेश होनेसे हुए कर्मोंका फल भोगनाही पड़ता है, इसीलिए भगवान्ने कहा है—

अनेकचित्त विभ्रान्ता मोहजाल समावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥

अनेक प्रकारके चित्त-विकारोंसे विभ्रान्त, मोहरूपी जालसे समावृत, विषयोंके भोगमें अत्यन्त आसक्त, आसुर स्वभाववाले मनुष्य अपवित्र नरकमें पड़ते हैं, अतः शास्त्रोंके द्वारा शुभ कर्मोंको जानकर और कर्तृत्व-भोक्तृत्वादि अभिमान छोड़कर भगवदर्पण बुद्ध्या कर्म करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है और शुद्ध अन्तःकरण भगवत्प्राप्तिमें सहायक होता है।

हिरण्यगर्भ लोक पर्यन्त सभी लोकोंसे मानवको मृत्युलोकमें लौट आना पड़ता है। केवल भगवान्कोही प्राप्त करलेनेपर जनम-मरण-संसृति मिटती है—

आब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥

अतः जीवनके चरम लक्ष्य, भगवत्प्राप्तिको चाहने वालोंको हिरण्यगर्भ लोकतककी इच्छाका परिहार करना चाहिए। इन उत्तमोत्तम लोकोंकी प्राप्तिकेलिए कर्मोंका अनुष्ठान न कर, भगवत्प्रसन्नताकेलिएहीं कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिए। देहाभिमान रहनेपर अनुष्ठित कर्मोंका फल अवश्य भोगना पड़ता है। व्यासजीने धृतराष्ट्रके अन्धे होने एवं उनके १०० पुत्रोंके नष्ट होनेके कर्म विपाकको बतलाया है कि, धृतराष्ट्र, आप पूर्वजन्ममें मानस हंसके सौ बच्चोंको खा गए थे। उसीसे संकुपित होकर उसने आपको शाप दे दिया कि, जाओ तुम दूसरे जन्ममें अन्धे होगे तथा तुम्हारे सौ पुत्र मारे जायेंगे। अतः शास्त्र विधिके अनुसार कर्मोंको भगवदर्पण बुद्धिसे करनेसे तथा सर्वप्रकारसे भगवान्की शरण जानेसे भगवान्की कृपा और उसीसे मानव अपने जीवनके परम लक्ष्यको प्राप्त कर सकता है। भगवान् स्वयं गीतामें कहते हैं—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसिशाश्वतम्॥

—भारत, संसार समुद्रको पार करनेकेलिए प्राणियोंके एक मात्र आश्रय, ईश्वरकी मनसा, वाचा, कर्मणासे शरण जाओ। उसी ईश्वरके अनुग्रहसे ब्रह्मज्ञानरूप पराशान्तिको प्राप्त करोगे।

जो मानव अपने जीवनके चरम लक्ष्य, भगवत्प्राप्तिको चाहते हैं उनकेलिए गूढ़तम उपाये बताए गये हैं। स्वयं भगवान् अर्जुनसे कहते हैं कि, अर्जुन सभी गोपनीयोंमें गोपनीय और परम उत्कृष्ट बात, मैं तुमसे कहता हूँ। सुनो, यह मैं सबसे नहीं कहता। तुम मेरे अत्यन्त प्रियहो। इसलिए यह परम हितकारी बचन कहता हूँ—

सर्वं गुह्यतमं भूयः शृणुते ते परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥

वह परम गोपनीय तथा हितकर वचन क्या है ? इसपर कहते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥

मुझ वासुदेवमेंही मन लगा रहता है जिसका, उसको मन्मना कहते हैं, अर्थात् मुझेही सोचो। यहाँ कहा जा सकता है कि, द्वेषसे तो कंस, शिशुपाल आदि भी भगवान्कोही सोचते थे, वैसेही क्या साधक भी करे ? इसपर कहते हैं,—नहीं, "मद्भक्तः", प्रेमसे मुझमें अनुरक्त होना चाहिए। द्वेषसे नहीं, अर्थात् अनुरागसे सदा मुझमें मन लगाओ। यदि साधक कहें कि, आपमें अनुराग कैसे होगा ? इसपर कहते हैं, "मद्याजी" मेरे पूजनकाही स्वभाव हो गया जिसका, ऐसेही होओ, अर्थात् सदा मेरी पूजामें रहो। यदि पूजाकी सामग्री न हो तो "मां नमस्कुरु" अर्थात् मन, वाणी और शरीरसे अत्यन्त विनम्र होकर मुझे प्रणामही किया करो। इस प्रकार सदा भागवत्धर्मका अनुष्ठान करनेसे मुझमें अनुराग उत्पन्न होगा। फिर साधक 'मन्मना होगा', फिर मन्मना होकर मुझ वासुदेवको प्राप्त हो जायगा, इसमें कोई सन्देह करनेकी बात नहीं।

मैं तुमसे यह प्रतिज्ञा कर रहा हूँ। अर्जुन, तुम मेरे प्रिय हो, इससे मैं तुमसे झूठ नहीं कह सकता।'

भगवान्के इस अत्यन्त गुह्य एवं परम हितकारी वचनके अनुसार चलनेवाले साधकको अवश्य अपने जीवनका लक्ष्य प्राप्त हो जाता है।

※

श्रेष्ठ भक्त कौन ?

आत्म-स्वरूप भगवान् समस्त प्राणियोंमें आत्मारूपसे-नियन्ता रूपसे स्थित हैं। जो कहीं भी न्यूनाधिकता न देखकर सर्वत्र परिपूर्ण भगवत्सत्ताकोही देखता है और साथही समस्त प्राणी और समस्त पदार्थ आत्म-स्वरूप भगवान्मेंही आधेयरूपसे अथवा अध्यस्तरूपसे स्थित हैं अर्थात् वास्तवमें भगवत्स्वरूपही हैं—इस प्रकार जिसका अनुभव है, ऐसी जिसकी सिद्ध दृष्टि है, उसे भगवान्का परम प्रेमी उत्तम भागवत समझना चाहिए।

जो श्रोत्र-नेत्र आदि इन्द्रियोंके द्वारा शब्द, रूप आदि विषयोंको ग्रहण तो करता है, परन्तु अपनी इच्छाके प्रतिकूल विषयोंसे द्वेष नहीं करता और अनुकूल विषयोंके मिलनेपर हर्षित नहीं होता,—उसकी यह दृष्टि बनी रहती है कि, यह सब हमारे भगवान्की माया है—वह पुरुष उत्तम भागवत है।

संसारके धर्म हैं—जन्म-मृत्यु, भूख-प्यास, श्रम-कष्ट, भय और तृष्णा। ये क्रमशः शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धिको प्राप्त होते ही रहते हैं। जो पुरुष भगवान्की स्मृति में इतना तन्मय रहता है कि, इनके बार-बार होते-जाते रहनेपर भी उनसे मोहित नहीं होता, पराभूत नहीं होता, वह उत्तम भागवत है।



[श्रीमद्भागवतसे]

"जयदेवजीके द्वारा दश संख्यामें न गिनाये गए, किन्तु इन दशों आकृतियों या अवतारोंको धारण करनेवाले अवतारी पुरुष भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र "कृष्णस्तु भगवान् स्वयं" के अनुसार स्वयं साक्षाद् भगवान् तथा 'भगवान्' शब्दके वास्तविक वाच्य एवं अर्थ-स्वरूपही हैं।"

श्रीकृष्णकी अखंड भगवत्ता

साहित्याचार्य श्रीरघुनाथप्रसाद चतुर्वेदी

मथ्यते या जगत्सर्वं ब्रह्मज्ञानेन येन वै।
मत्सारभूतं यद्-यद् स्वान्मथुरा सा निगद्यते॥

गोपालोत्तरतापिनी उपनिषद्के इस वचनके अनुसार जो समस्त जगत्को अपने ब्रह्मज्ञानसे मथकर, उस मथनके सारभूत तत्व, सर्वश्रुतिगोचर, अखिल ब्रह्माण्ड नायक, असंख्य अवतारोंको धारण करनेवाले पुराण पुरुषोत्तम, आनन्दकन्द, श्यामसुन्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रूप अमृततत्वको आविर्भूत करती है, वही मथुरा है।

भगवान् श्रीकृष्ण रूप अमृततत्वको आविर्भूत करनेवाली इस मथुरामें—श्रीजयदेवजी के "वेदानुद्धरते जगन्निवहते" पद्यके "दशाकृति कृते कृष्णाय तुभ्यं नमः" के अनुसार अनेक अवतारोंके रूपमें अवतरित होनेवाले अवतारी पुरुष आनन्द-कन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥

आदि श्रीमद्भगवद्गीतोक्त अपने वचनके अनुसार धर्मकी ग्लानि और अधर्मके अभ्युत्थानके अवसरपर आत्मसर्जनकी अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण कर—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे॥

वचनके अनुसार साधु परित्राण, दुष्कृत विनाश और धर्म संस्थापन रूप आत्म संभवके अपने तीन प्रयोजनोंको देख—

गिरं समाधौ गगने समीरितां निशम्य वेधास्त्रिदशानुवाच ह।
गां पौरुषींमेभृणुतामराःपुनर्विधीयतामाशु तथैव मा चिरम्॥

आदि श्रीमद्भागवतके वचनके अनुसार क्षीरसागरके तटपर ब्रह्माजी सहित समस्त देवगणोंकी प्रार्थनापर, समाधिमें ब्रह्माजीके प्रति कही गई अपनी आकाशवाणीको याद कर क्रूर कर्मा कंसकी कुटिल कुचेष्टाओंसे कुत्सित उसके कारागारको दिव्यता प्रदान करनेकेलिए—देवस्वरूपिणी देवकीकी उदर-दरीसे उस प्रकार आविर्भूत हुए, जिस प्रकार उज्वल नील खमण्डलमें कृषिकर्म निरत चर्षणीरूप कृषकवर्गके शोक परिमार्जन हेतु शीतल किरणोंके प्रसारसे आनन्दप्रद राकापति निशाकरका पूर्णविम्ब उदित होता है।

समय-समय पर अनन्त अवतारोंको धारण करनेवाले, जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रने अपने विशेष-विशेष कार्योंकी पूर्तिकेलिए अंश तथा कलाओंके रूपमें अनेक अवतार धारण किये हैं। मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र, वलराम आदि सभी अवतारोंकी तात्विकताकी ओर दृष्टिपात करनेसे यही वात ज्ञात होती है, कि—"एते चांश कलाः पुंसः"के अनुसार भगवान्के इन अवतारोंमें कुछ अंशावतार तथा कुछ कलावतार हैं। जयदेवजीके द्वारा दश संख्यामें न गिनाये गये, किन्तु इन दशों आकृतियों या अवतारोंको धारण करनेवाले अवतारी पुरुष भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र—"कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्"के अनुसार स्वयं साक्षाद् भगवान् तथाभगवान् शब्दके वास्तविक बाच्य एवं अर्थ स्वरूप ही हैं, जैसा कि, उनके प्रत्येक चरित्र पर दृष्टिपात करनेसे बड़े ही स्पष्टरूपसे जाना जाता है :—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चादिषण्णां भग इतीङ्गना॥
उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानाम मतिं गतिम्।
वेत्ति विद्या मविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥

आदि वचनोंके अनुसार उसी व्यक्ति विशेषको वास्तविक भगवान् कहा जा सकता है, जिसके चरित्र या व्यक्तित्वमें इन सभीकी पूर्णता दिखलाई दे। लाक्षणिक रूपमें भले ही किसी व्यक्तिविशेषके साथ भगवान् शब्दका प्रयोग करलें, किन्तु वह उसका वास्तविक या तात्विक अधिकारी नहीं। संसारमें समय-समय पर आनेवाले तथा भगवान्के अवतारके रूपमें अवतरित होनेवाले अनेक महापुरुषों तथा तत्तत् अवतारोंके कार्यों एवं चरित्रोंको सूक्ष्म-दृष्टिसे देखने पर यह बात बड़े स्पष्ट रूपसे ज्ञात हो जाती है।

भगवान् श्रीकृष्णके व्यक्तित्व और जीवनमें आचरित उनके चरित्रोंको ध्यानसे देखने पर यही ज्ञात होता है कि, उनके शरीरमें ऐश्वर्य आदि ये सभी पदार्थ या गुण पूर्ण परिमाणमें विद्यमान थे। उनकी बाल्यावस्थासे लेकर उनके समग्र जीवनका ऐसा कोई भी कार्य या चरित्र नहीं दिखलाई देता, जिससे दर्शकको उनकी पूर्णता तथा सर्वशक्तिमत्ता एवं सर्वैश्वर्यवत्ताका ज्ञान न हो।

मैं जो हूँ, वही मेरी प्रतिमा है, वहाँ कोई दूसरा धर्म नहीं है। उसमें मेराही वास है। भेद और आयासका कुछ काम नहीं। कलिमें प्रतिमाही सबने श्रेष्ठ साधन है, ऐसा दूसरा साधन नहीं। एका जनार्दनकी शरणमें है। दोनों रूप भगवान्केही है।

संतएक नाथ

"श्रीललितकिशोरीके प्रेमकी कसौटी कितनी सच्ची और कितनी खरी है ! प्रेमके समुद्रमें डूबनेवाला, यदि भीतरसे उछलकर बाहर आजाय तो उसका 'प्रेम' 'प्रेम' कैसा ? उसका 'डूबना' 'डूबना' कैसा ? श्रीललितकिशोरीजी तो जब प्रेमके सिन्धुमें डूबे तो फिर डूबे ही रहे।"

सखी भावके देवता-श्रीललितकिशोरी

श्रीधनंजय

भक्ति, भावजगत्का अद्भुत भाव है। जीवके भीतर जब भक्ति भाव उत्पन्न होता है, तो जीवके भीतर दो प्रकारके समुज्वल, और सुदृढ़ भावोंका उदय होता है। एक भाव तो होता है त्यागका, और दूसरा होता है, ग्रहणका। जीवके त्यागभावकी परिधिमें वे संपूर्ण प्रवृतियाँ होती हैं, जो उसे उसके आराध्य देव-उसके प्रियतमकी ओर अग्रसर होनेमें अवरोध उत्पन्न करती हैं। उसके ग्रहणकी परिधिमें होती हैं वे अनुरक्तियाँ, जो उसे उसके आराध्य देव-उसके प्रियतमके आचरण, कार्य, वेश-भूषा और खानपान तथा रहनसहनके साँचेमें अपने को ढालनेकेलिए निरन्तर प्रोत्साहित-प्रेरित करती हैं। जीवके भीतर जिस परिमाणमें भक्ति-भाव उत्पन्न होता है उसी परिमाणमें उसके भीतर, इन दोनों भावोंका-वृत्तियोंका प्रस्फुटन होता है। जीव अपने भक्तिभावकी पृष्ठभूमिपर अपना पग जमाकर, अपनी इन्हीं दोनों वृत्तियोंका पाथेय लेकर अपने प्रियतमकी ओर अग्रसर होता है।

भक्तोंके जीवनमें प्रायः वैचित्र्य देखा जाता है। उनके खानपान, रहन-सहन, आलाप-संलाप, वेश-भूषा आदि सबमें कुछ न कुछ वैचित्र्य और अनूठापन दृष्टिगोचर होता है। यह वैचित्र्य-यह अनूठापन वैचित्र्य नहीं, भक्तिभावकी वास्तविकता और प्रेमकी तन्मयता है। जीवके भीतर जब भक्तिभाव उमड़ता है, जब प्रेमका समुद्र तरंगायित होता है, तो जीव अलंघ्य प्राचीरोंको लाँघकर, दुर्दमनीय वन्धनोंको तोड़कर अपने आराध्य देवमें-अपने प्रियतम में मिलजानेकेलिए 'व्यग्र' हो उठता है। इसी 'व्यग्रता'में—इसी व्याकुलतामें एक ओर वह जहाँ सम्पूर्ण सांसारिक आसक्तियोंसे पृथक् जा खड़ा होता है, वहीं दूसरी ओर वह अपने प्रियतमके सम्पूर्ण कार्य-व्यापारोंके साँचेमें अपनेको ढाल भी लेता है। भलेही जगत्की दृष्टि में उसका कार्य 'वैचित्र्य'सा प्रतीत होता हो, पर वह तो इसीको 'भक्ति' और 'प्रेम'की

वास्तविकता समझता है। वह 'भक्त' और 'प्रेमी' ही कैसा, जो अपनेको अपने आराध्यदेवके साँचेमेंन ढालले, अपने जीवनके व्यापारोंको उनकेही जीवन-व्यापारोंके सदृश न बना ले !

'ललितकिशोरी'जीने तो अपनी भक्ति और प्रेमकी व्याकुलतामें अपने 'लिंग' तकका परित्याग कर दिया था। वे पुरुष थे, पर उनकी दृष्टिमें 'पुरुष'के रूपमें, आराध्या राधा जी में प्रविष्ट होना-उनके चरणों तक पहुँचना असम्भव-सा प्रतीत हुआ। अतः उन्होंने भी वही 'लिंग' धारणकर लिया, जो उनकी परम आराध्या राधाजीके साथ जुटा हुआ था। एक पुरुष, और उसका नाम ललितकिशोरी, जगत्की दृष्टिमें भलेही यह वैचित्र्य हो, पर इसी वैचित्र्यने तो 'ललितकिशोरी'जीको राधाजीका अभिन्न बना दिया। ललितकिशोरीजी का यह वैचित्र्य-वैचित्र्य नहीं, उनकी भक्तिका-उनके स्वाभाविक प्रेमकी वास्तविकता थी। वे राधाभावमें, बाहरसे भीतरतक राधामय हो गये थे उनका शरीर, उनका मन, उनका प्राण, उनके कार्य, और उनके आचरण-सबमें राधा भावकीही गूँज थी। ठीक, राधाकी भाँतिही उनमें राधावल्लभकेलिए व्याकुलता-व्यग्रता भी थी। उनकी सम्पूर्ण मानवी भावनाएँ-प्रवृतियाँ श्रीराधाजीको स्पर्श करती हुई ही श्रीकृष्णकी ओर उन्मुख थीं। उनकी भक्ति-उनका प्रेम दो पवित्र कुण्डोंके निर्मल जलसे अपनेको सुदिव्य बनाता था—'राधाकुण्ड'के जलसे, 'श्यामकुण्ड'के जलसे। बिना 'राधाकुण्डमें डुबुकी लगाए कोई श्यामकुण्डमें डुबुकी कैसे लगा सकता है ? बिना राधा बने कोई राधावल्लभको कैसे पा सकता है ? पर राधा बनना-'माधव'केलिए 'राधाभाव'के साँचेमें अपनेको ढालना क्या सरल है ? दूसरोंकेलिए चाहे वह 'राधाभाव' कितनाही दुष्कर रहा हो, पर श्रीललितकिशोरी जीकी भक्ति और उनके प्रगाढ़ प्रेमने तो उनकेलिए उसे सरल बना दिया। तभी तो 'पुरुष लिंग'की अपनी परिधिसे बाहर निकलकर, वे अपनी हृदय-वीणापर अपने निम्नांकित प्राण-पदको गानेमें समर्थ हो सके—

कोई दिलवर की डगर बताय दे रे।
लोचन कंज कुटिल भृकुटी कच कानन कथा सुनाय दे रे॥
'ललितकिशोरी' मेरे वाकी चित की साँट मिलाय दे रे।
जाके रंग रंग्यो सब, तन-मन ताकी झलक दिखाय दे रे॥

श्री'ललितकिशोरी'जीके दिलवर वही गिरिधर हैं, जो श्रीराधिकाजीके भी दिलवर हैं। उन्होंने इन्हींकेलिए तो अपने तन मनको रँग लिया है। 'राधा'को तो केवल 'श्रीकृष्णभाव' के ही साँचेमें अपनेको ढालना था, पर श्रीललितकिशोरीजीके प्रेमको तो दो-दो प्राचीरें लाँघनी पड़ीं-'राधाभाव'की, 'श्रीकृष्णभावकी। कौन विभोर नहीं हो उटेगा श्रीललितकिशोरीजीके भक्ति-भावपर, किसके मन-मयूरके पैर न थिरक उठेंगे उनके प्रेमपर ! श्री'ललितकिशोरी' जीके भक्ति और प्रेमभावमें केवल भक्तिही भक्ति और प्रेमही प्रेम है। भक्तिही भक्ति है केवल 'भक्ति'केलिए और प्रेम ही प्रेम है केवल 'प्रेम'केलिए। देखिए, निम्नांकित पंक्तियोंमें श्रीललितकिशोरीजीकी 'भक्ति' और 'प्रेम'का प्रतिबिंब :—

दुनिया के परपंचों में हम मजा कछू नहिं पाया जी ।
भाई बंधु-पिता-माता, पति सबसों चित अकुलाया जी ।।
छोड़-छाड़ घर, गाँव-नांव, कुल, यही पंथ मन भायाजी ।
'ललितकिशोरी, आनन्दघन सों अब हठि नेह लगाया जी ।।

श्रीललितकिशोरीजीने श्रीराधा और गोपियोंकी भाँतिही श्रीकृष्णपर अपना सर्वस्व निछावर कर दिया है। उनके इस प्रेम और भक्ति-समर्पणको, विवेचकोंने सखी भावके अन्तर्गत प्रतिष्ठित किया है। सखी भावका अर्थ है आराध्यदेवकी सखी वनकर उनके चरणोंपर—उनके प्रेमकी वेदिकापर अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर देना। कहनाही पड़ेगा, कि श्रीललितकिशोरीजीमें सखीभावकी पूर्णरूपमें पराकाष्ठा मिलती है। श्रीकृष्णकी प्रिया श्रीराधा और उनकी सखियोंकी भाँति श्रीललितकिशोरीजीने भी वृन्दावनके कुञ्ज-कुञ्जमें, द्रुम-द्रुममें, और वेलि-वेलिमें श्रीकृष्णभावका अनुभव किया है। ठीक उन्हींके सदृश श्रीललितकिशोरीजीके प्राणभी व्रजके कुञ्ज-निकुंजोंमें थिरकते और 'श्याम विरह' में श्यामको टेरतेहुए विह्वल दृष्टिगोचर होते हैं। वे यमुनामें, यमुनाकी रेणुमें, व्रजमें, व्रजके निकुंजोंमें, वृन्दावनमें, वृन्दावनके लताद्रुमोंमें, पक्षियोंमें, पक्षियोंके कलरवमें—सबमें उन्हें माधव ही माधव दृष्टिगोचर होते हैं। उन्हें माधव और स्वयं निजके अस्तित्वके, जो राधा रूप है, सखी रूप है, और कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता। यही तो श्रीकृष्णके प्रति राधाभावकी अनन्यता और विभोरता है। देखिये, श्रीललितकिशोरीजीने अपने प्रेमकी अनन्यताका चित्र किन शब्दोंमें चित्रित किया है:—

गौर-श्याम बदनारविन्द पर जिसको वीर मचलते देखा ।
नैन-बान, मुसक्यान संग फँस, फिर नहिं नेक सँभलते देखा ।।
'ललितकिशोरी' जुगल इश्क में बहुतों का घर घलते देखा ।
डूवा प्रेमसिन्धु का कोई हमने नहीं उछलते देखा ।।

श्री ललितकिशोरीजीके प्रेमकी कसौटी कितनी सच्ची और कितनी खरी है! प्रेमके समुद्रमें डूबनेवाला, यदि भीतरसे उछलकर वाहर आजाय, तो फिर उसका 'प्रेम' प्रेम कैसा, उसका डूबना'डूबना' कैसा? श्रीललितकिशोरीजीतो जब प्रेमके सिंधुमें डूबेतो फिर डूबेही रहे। इन्होंने अपने प्रेमके पैमानेसे, जब अपने अनन्तस्वरूप वाले प्रियतमकी अछोरताको नाप लिया, तब फिर वे उसीको परमावधिके रूपमें क्यों न माने ?

श्रीललितकिशोरीजी लखनऊ के निवासी थे। विक्रमके बीसवीं शताब्दीकी बात है, लखनऊमें क्रान्तिकी आँधियाँ चल रही थीं। सारे देशमें १८५७ की विद्रोहाग्निकी चिनगारियाँ छिटक उठी थीं। लखनऊके शाही महलमेंभी, विप्लव पोषित होरहा था। गली-गलीमें क्रान्तिके झँकोरे, मोड़-मोड़पर विप्लवके लिए कानाफूँसी। श्रीललितकिशोरीजीके प्रेमिल प्राणोंको, लखनऊमें कहींभी सांस लेनेके लिए शान्ति-संगम नहीं मिल पारहा था। वे समाकुल

हो उठे, और अपने पूर्वजोंके निवासस्थान लखनऊको छोड़कर, अपने प्रियतम श्रीकृष्णके प्रिय धाम वृन्दावनके लिए चल पड़े। वे जब चलने लगे, तो उनके भाई साह फुन्दनलालजीने उनसे अनुरोध किया कि, वे उन्हेंभी अपने साथ वृन्दावन ले चलें। दोनों भाइयोंमें प्रगाढ़ प्रेम था। परिणामस्वरूप श्रीललितकिशोरीजी उनके आग्रहको टाल न सके, और उन्हेंभी साथमें लेकर वृन्दावन चले गये।

श्रीललितकिशोरीजीका वास्तविक नाम साह कुन्दनलाल था। उनके पिताका नाम गोविन्दलालजी था, जो लखनऊके जौहरियों में प्रमुख थे। साह कुन्दनलालजी दो भाई थे। स्वयं वे, और साह फुन्दनलालजी। दोनों भाइयोंमें प्रगाढ़ बंधुभाव तो था ही, दोनों भाई भक्ति और प्रेमके पथ पर भी साथही साथ चलते थे। साह कुन्दनलालकी भाँतिही साह फुन्दनलालभी अपनेको 'श्री ललितमाधुरी' कहतेथे। इस प्रकार 'ललितकिशोरी' और 'ललितमाधुरी' की दिव्य, मनोहर जोड़ी थी। दोनों भाइयोंने वृन्दावनमें रहकर, प्रेम और भक्तिकी ऐसी दिव्यधारा प्रवाहितकी कि, वृन्दावनही नहीं, सम्पूर्णभक्ति-जगत् तक अभिषिक्त हो उठा। इन दोनों भाइयोंके प्रेमकी मस्तीके सम्बन्ध में, आज भी लोग विभिन्न प्रकार की कथाएँ और कहानियाँ कहकर विभोर हुआ करते हैं। निम्नांकित पंक्तियोंमें, श्रीललितकिशोरीजीकी उस सर्व प्रशंसित प्रेम मस्तीही की गूँज है—

जमुना पुलिन कुंज गहबर की कोकिल ह्वै द्रुम कूक मचाऊँ।
पद पंकज प्रिय लाल मधुप ह्वै मधुरे मधुरे गूँज सुनाऊँ॥
कूकर ह्वै बन बीथिन डोलौं, बचे सीथ रसिकन के खाऊँ।
ललितकिशोरी आस यहै मम, व्रज रज तजि छिन अनत न जाऊँ॥

श्रीललितमाधुरीके प्रेमवेणुमें भी इसी स्वर की गूँज है:—

देखो बलि वृन्दावन आनन्द।
नवल सरद निसि नव बसंत रितु, नवल सु राका चन्द॥
नवल मोर पिक कीर कोकिला, कूजत नवल मलिन्द।
रटत श्री राधे राधे माधव, मारुत सीतल मन्द॥
नवल किसोर उमंगत खेलत, नवल रास रस कन्द।
ललित माधुरी रसिक दोउ बर, निरतत दिये कर चन्द॥

संवत् १९१७ वि० में श्रीललितकिशोरीजीने एक अत्यन्त सुन्दर, दिव्य मन्दिरकी नींव डाली। संवत् १९२५में संगमरमरके पत्थरोंसे विनिर्मित मन्दिर बनकर तैयार होगया और उसमें श्रीललितकिशोरजीके 'ठाकुर' विराजमान हुए। श्रीललितकिशोरीजीका वह मन्दिर आजभी 'ललित निकुंज'के रूपमें दर्शकों और प्रेमियोंके आकर्षणका प्रमुख केन्द्र बना हुआ है। श्रीललितकिशोरीजीने 'रास विलास', 'अष्टयाम' और 'समय प्रबन्ध' सम्बन्धी बड़े ही

मधुर और प्रेमपूर्ण पदोंकी रचना की है। उनके गोलोक गमन के पश्चात्, ललितमाधुरीजीने जो पद बनाए, उनमें उन्होंने ललितकिशोरीजीकी ही छाप रखी है।

श्रीललितकिशोरीजी अनन्य प्रेमके पंथीथे। उनकी उपासनामें सखीभावकी परमावधि देखनेको मिलतीहै। वे वृन्दावनमें एक टूटे मन्दिरके कुंजमें निवास करतेथे। प्रत्येक छः मासके पश्चात् कुंजका द्वार खुलता था। उस दिन उनके दर्शनकेलिए सन्तों, महात्माओं और प्रेमियों तथा भक्तोंकी वहुत भीड़ एकत्र होती थी। लोग उनका दर्शन करके कृतकृत्य हो उठते थे। संवत् १९३०की कार्तिक शुक्ल द्वितीयाको जब उन्होंने निकुंजमें प्रवेश किया, तब वे सचमुच निकुंजमें ही समाविष्ट होगए।

श्रीललितकिशोरीजीने भक्ति और प्रेमका जो उज्वल प्रवाह प्रवाहित किया है, वह अविच्छिन्न रुपमें युगोंतक प्रेमियोंको अभिपिक्त करता रहेगा, उनके प्राणोंमें हिलोरें लेता रहेगा।



एक कटु सत्य

एक यात्रा की बात है। कुछ वृद्ध स्त्री पुरुष तीर्थ जा रहे थे। एक सन्यासी भी उनके साथ थे। मैं उनकी बातें सुन रहा था। संन्यासी उन्हें समझा रहे थे: "मनुष्य अन्त समय में जैसे विचार करता है, वैसी ही उसकी गति होती है। जिसने अन्त सँभाल लिया, उसने सब सँभाल लिया। मृत्यु के क्षण में परमात्मा का स्मरण होना चाहिये। ऐसे पापी हुये हैं, जिन्होंने भूल से ही अन्त समय परमात्मा का नाम ले लिया था और आज वे मोक्ष का आनन्द लूट रहे हैं।" संन्यासी की बातें अपेक्षित प्रभाव पैदा कर रही थीं। वे वृद्धजन अपने अन्त समय में तीर्थ जा रहे थे और मनचाही बात सुन फूले नहीं समा रहे थे। सचही सवाल जीवन का नहीं, मृत्यु का ही है और जीवन भर के पापों से छूटने को भूल से ही सही, बस परमात्मा का नाम लेना ही पर्याप्त है। फिर वे तो भूल से नहीं, जान बूझकर ही तीर्थ जा रहे थे। उनकी प्रसन्नता स्वाभाविक ही थी। और इस प्रसन्नता में ही वे संन्यासी की सेवा भी कर रहे थे।

मैं उनके सामने ही बैठा था। संन्यासी की बात सुनकर हंसने लगा तो संन्यासी ने सक्रोध पूछा: "क्या आप धर्म पर विश्वास नहीं करते हैं?" मैंने कहा: "धर्म कहाँ है? अधर्म के सिक्के ही धर्म बनकर चल रहे हैं और खोटे सिक्के ही विश्वास मांगते हैं। असली सिक्के तो आंखें चाहते हैं। विश्वास की उन्हें आवश्यकता ही नहीं। विवेक जहाँ अनुकूल नहीं है, वहीं विश्वास माँगा जाता है। विवेक की हत्या ही तो विश्वास है। लेकिन न तो अंधे मानने को राजी होते हैं कि अंधे हैं और न ही विश्वासी ही राजी होते हैं। अंधों ने और अंधोंके शोषकों ने मिलकर जो षणयंत्र किया है, उसने करीब करीब धर्म की जड़ें ही काट डाली हैं, धर्म की साख है और अधर्म का व्यापार है।

"श्रद्धा मनका वह दैवी भाव है, जो मनुष्यकी उत्कृष्ट विचार-बुद्धिको अन्तरकी ओर, अज्ञात, अगोचर, परात्परकी ओर प्रेरित करता है और चेतनाको उस सूक्ष्म जगत्की ओर लेजाता है, जहाँ सभी पूर्ण हैं; और स्थूल दृश्यमान् वस्तु से भी कहीं बढ़कर सत्य है।"

दिव्य प्रेरक शक्तियाँ—श्रद्धा और स्नेह

डा० श्रीरामचरण महेन्द्र एम. ए. पी. एच. डी.

मनुष्यका हृदय एक फुलवारीकी तरह है। उसमें क्रोध, ईर्ष्या और आवेशके शूल हैं तो श्रद्धा, स्नेह, सेवा, करुणा और सहानुभूतिके मधुर फूलभी सौरभ फैला रहे हैं। पहला मार्ग राक्षसी-दुस्प्रवृत्तियोंका नर्क उत्पन्न करता है, तो दूसरा दैवी शुभवृत्तियोंका स्वर्ग।

मनुष्य जितनाही शुभ भाव धारण करता है, उसका उतना ही मानसिक सन्तुलन ठीक रहता है, जितना ही आसुरी विकार के वातावरण में रहता है, उतना ही द्वन्द्वपूर्ण विषम मनः स्थितिमें निवास करता है। मनुष्यकी गुप्त नैतिकता संसारको रसमय बनाती है, आसुरी वृत्तियाँ गुप्त मनमें जमते ही मनको चिन्ता और उद्वेग से भर देती हैं। हमारा आन्तरिक मन भले और बुरे, गुण अवगुणोंके अनुसार दुःख सुखकी वृत्तिका अनुभव करता रहता है। प्रत्येक अच्छी या बुरी भावना, जो हमारे गुप्त मनमें कुछ देरके लिएभी निवास करती है, शरीरको अपनी ओर खींचती है, अपनी संगति या कुसंगतिके अनुसार बदलती रहती है।

हमारा गुप्त मन जब किसी स्थायी भावको पूरी तरह ग्रहण कर लेता है, तब गुप्त मन उसे एक मानसिक ग्रन्थिके रूपमें जकड़कर पकड़ लेता है। वह हमारे जीवनकी एक स्थायी मनोवृत्ति बन जाती है। अतः हमें अन्तरकी अचेतन वृत्तिमें दैवी उर्वर भावनाओं को ही स्थान देना चाहिये। बुरी वृत्तियाँ, दुष्ट स्वभाव, चिन्ताकी आदत, घृणायुक्त वातावरणको हटानेके लिए भव्य भावनाओंकी जड़ें जमानी चाहिए।

रसयुक्त वातावरण कैसे बने?

जैसे आप समझबूझकर उत्तमोत्तम फूलोंकोही अपनी फुलवारीमें स्थान देते हैं, वैसेही चुन-चुनकर सर्वोत्कृष्ट मानवी भावनाओंको मनके उद्यानमें लगाइये।

मनमें सुव्यवस्था और सन्तुलन प्रेम, सहानुभूति और श्रद्धासे उत्पन्न होता है। प्रेम वह बीज है, जिसके बो देने से अन्य सभी कोमल दैवी भाव स्वयं पैदा होने लगते हैं। प्रेम से हमारा मानसिक विकास होता है। सन्तुलन उपस्थित होता है।

एक मनोवैज्ञानिकके शब्दोंमें "प्रेम वह राग है, जिसके उत्पन्न होनेपर अन्य सभी राग उसमें लय होजाते हैं। जब मनुष्यके जीवनमें प्रेमका अभाव होजाता है, तो उसकी मानसिक शक्तिभी नष्टप्राय हो जाती है। प्रेमके कम होते ही मनुष्य अपना आत्मविश्वास खो देता है। प्रेमकी आँखोंसे देखनेपर संसार रसमय और सुन्दर दिखाई देता है। दूसरी ओर प्रेमतत्त्वका अभाव होतेही प्रिय वस्तु सूखी और कुरूप दिखाई देने लगती है। ऐसी अवस्थामें मनुष्य अपने सामर्थ्यको भी भूल जाता है।"

प्रेमका निखरा हुआ शुभ सात्विक स्वरूप श्रद्धा है। श्रद्धा मनुष्यका वह सात्विक, पूज्य एवं आनन्दप्रद दैवी भाव है, जो किसी व्यक्ति विशेषमें किन्हीं असाधारण, असामान्य एवं महत्वपूर्ण गुणोंके साक्षात्कार होनेपर हृदयमें उदित होता है। किसी व्यक्तिकी शालीनता, विद्वत्ता, धर्मज्ञता, कलात्मक सुरुचि, तपश्चर्या, उन्नत आत्मा और राष्ट्रीय हित की भावना आदि सद्गुणोंके साक्षात्कार होनेपर हृदयमें श्रद्धाका भाव उठता है। श्रद्धा हमें दैवी आनन्दानुभूति प्रदान करती है।

जब हम किसी व्यक्तिको सदा-सर्वदा उन्नत पाते हैं, उसमें कोई त्रुटि नहीं देखते, तो श्रद्धा भाव हमारे हृदयकी स्थायी वृत्तिका रूप धारण कर लेता है। हमारा समस्त स्नेह, सारा सम्मान, निःस्वार्थ सद्भावनाएं और समग्र शुभ कामनाएं ऐसे श्रद्धेय पुरुषके लिए सुरक्षित होजाती हैं, जिसे हम आदर्श मानते हैं और जिसके सद्गुणोंको हम स्वयं अपने अन्दर धारण करना चाहते हैं।

हृदयमें बहुत दिनोंसे संचित, एकत्रित स्नेह सम्मान, यही आदर और प्यारका सम्मिश्रणभाव, यही पर-महत्व-स्वीकृति, यही पूज्य बुद्धिका संचार, यही निःस्वार्थ अनुराग सम्बन्ध श्रद्धा है। वह मनुष्य धन्य है, जिसका कोई आराध्य है।

श्रद्धा का उच्च और व्यापक रूप

जब श्रद्धा किसी व्यक्ति विशेषके लिए होती है, तो वह उसका संकुचित रूप होता है, किन्तु इससे ऊपर उसका एक उच्च और व्यापक स्वरूप भी है। श्रद्धा मनकी वह आध्यात्मिक स्थिति है, जो अत्यन्त असाधारण, उच्च और गम्भीर है। एक विद्वान्के शब्दोंमें—

"श्रद्धा मनका वह दैवीभाव है, जो मनुष्यकी उत्कृष्ट विचार-बुद्धिको अन्तर की ओर, अज्ञात, अगोचर, परात्परकी ओर प्रेरित करता है और चेतनाको उस सूक्ष्म जगत्

की ओर लेजाता है, जहाँ सभी पूर्ण हैं और स्थूल दृश्यमान वस्तुसे भी कहीं बढ़कर सत्य है। यह मनकी वह उदात्त अवस्था है, जो ज्ञानपूर्ण है, क्योंकि वह सदा चैतन्य बुद्धि और प्रकाशके उच्चतम शिखरपर आसीन रहता है।"

श्रद्धा और स्नेह मनुष्यकी दैवी सम्पदाएँ हैं। मानव-मनमें प्रवाहित दो निर्मल धाराएँ हैं। हृदयकी दो पवित्र और गुणकारी रागात्मिका सद्प्रवृत्तियाँ हैं। आत्म-श्रद्धा ही मनुष्यका वास्तविक स्वरूप है। हम स्वयं जितनी अपने भीतर श्रद्धा रखते हैं, जितना अपनी शक्तियोंके ऊपर अखण्ड विश्वास करते हैं, उतनीही उन्नति करते हैं। हर क्षेत्रमें गुप्त साहससे आगे बढ़ते हैं। इहलोक और परलोकमें श्रद्धाही हमारी वास्तविक प्रतिष्ठा का रहस्य है।

गीताका अमर सन्देश है:—

"सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत
श्रदामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।"

मनुष्यको श्रद्धा सम्पन्न होनेकी प्रेरणा देती है। ईश्वरीय प्रेरणासे किये गये निष्काम कर्म, ध्यान, सेवा, सत्संग आदि मनुष्यके हृदय जगत्को पवित्र एवं शुद्ध बना देते हैं, ज्ञानसूर्य के प्रकाशसे वह आलोकित हो उठता है। तब श्रद्धाही ईश्वर-प्राप्तिका साधन बन जाती है। मनुष्यका प्रथम और प्रधान कर्तव्य है आत्माको उन्नत बनाना।

गीताका कथन है—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मोनमवसादयेत्।

श्रद्धा पूर्णप्राप्तिकी ओर उन्मुखकर मानवको आत्माकी उन्नतिके महान् कार्यमें पूर्ण योग देती है।

श्रद्धा आत्मविश्वासकी चरम सीमा है, उसकी अग्रिम स्थिति है। अटल प्रतीति और दृढ़ विश्वास श्रद्धामें प्राण डालता है।

जहाँ कहीं वास्तविक श्रद्धा और गहरी पवित्रता होती है, वहीं आरोग्य, सिद्धि और सामर्थ्य उपस्थित होता है। ऐसी दशामें रोग, असिद्धि और दुर्भाग्य कदापि नहीं ठहर सकते, क्योंकि वहाँ इनको पालन और पुष्ट करनेके लिए कोई वस्तु नहीं है।

अपनी शक्तियों और योग्यताओंके प्रति पूर्ण श्रद्धा बनाये रखिए। अपनी शक्ति और सामर्थ्यका ही निरन्तर चिन्तन करते रहिये। जो मनुष्य निरन्तर किसी गुण विशेषका ध्यान करता रहता है, पुनः-पुनः चिन्तनसे वह गुण उसमें जाग्रत हो जाता है। अतएव आप जिस गुणका भी ध्यान करें, वह उत्तम और समाजके लिए उपयोगी होना चाहिए।

आपकी जिसके प्रति श्रद्धा होगी, उसी महापुरुषके दिव्यगुण धीरे-धीरे आपके व्यक्तित्व में आयेंगे, क्योंकि आपका गुप्त मन उन गुणोंको स्वतः ग्रहण करता जायगा। वह चुपचाप उनका अनुकरण करता है। आपकी श्रद्धाही मधुर फल पैदा करती है। महात्माओं, विद्वानों, साधु पुरुषों, समाज सेवियों, देशके नेताओं, महान् विचारकों और वैज्ञानिकों, जिनके प्रति भी आपके मनमें श्रद्धा होगी, वही गुण निरन्तर चिन्तन और विचार करनेसे आपके व्यक्तित्व में भी विकसित होंगे, यह निश्चय मानिये। श्रद्धा आपके मनमें प्रत्यक्ष स्वरूप ग्रहण करती है।

मोरी खबर प्रभु लीजै

द्वार पड़े हौं तेरे रघुवर,
बांह पकरि गहि लीजै।
तेरो सहारौ मोय साँवरे,
मम पीड़ा हर लीजै।
मोरी खबर प्रभु लीजै ॥१॥

मीरा की प्रभु लाज बचाई,
द्रोपदी की तुम चीर बढ़ाई।
अब की संकट मोपै आयो,
मोय भरोसौ दीजै।
मोरी खबर प्रभु लीजै ॥२॥

गज ने पुकारो दौड़कर आये,
भक्तों के प्रभु कष्ट मिटाये।
अबकी बारी मोरी आई,
मोय सहारौ दीजै।
अब तो खबर प्रभु लीजै ॥३॥

तोयँ छाड़ि, हौं कौन भजेंगो,
तोय पकरि अब कौन गहौंगो।
तोय चाह, अब कौन चहौंगो,
अपनी शरण गहि लीजै।
मोरि खबर प्रभु लीजै ॥४॥

या कलियुग में जन्म दियो है,
भवसागर में डारि दियौ है।
'आर्यबन्धु' के कान्ह साँवरे,
मेरी भी सुन लीजै।
मोरी खबर प्रभु लीजै ॥५॥

डूबौ जावौं कलि माया से,
जल्द उबारौ भवसागर से।
अबकी कान्हा पार लगावौ,
इतना यश गहि लीजै।
मोरी खबर प्रभु लीजै ॥६॥

मेरी पीड़ा श्याम हरौगे,
मम मानस में आन बसौगे।
मेरे हौ, प्रभु, मोरे रहौगे,
इतना बस कहि दीजै,
मोरी खबर प्रभु लीजै ॥७॥

कर जोरी हौं, श्याम पुकारौं,
मोरे तन के कष्ट निवारौ।
मोय सहारौ, श्याम तिहारौ,
अब की बस सुन लीजै,
मोरी खबर प्रभु लीजै ॥८॥

सूरदास को सूर बनायो,
पंगु कौं गिरि लांघ चढ़ायौ।
ऐसे हो प्रभु दीनदयाला,
दया दृष्टि फिर कीजै।
मोरी खबर प्रभु लीजै ॥९॥

तुलसीजी को कवि बनायौ,
वाल्मीकि प्रकाण्ड कहायौ।
"आर्यबन्धु" भी दास तिहारौ,
जाहि कवी, कह दीजै,
मोरी खबर प्रभु लीजै ॥१०॥

—:०:—

श्रीगेंदालाल 'आर्यबन्धु' एम. ए.

मृत्युके पश्चात् अमर जीवन-प्राप्तिके साधनोंका
विवेक पूर्ण विवेचन

"हे देवगण हम कानोंसे कल्याणकारक वचन सुनें, हे पूजनीय देवों, हम आंखोंसे कल्याणकारक दृश्य देखें। जब तक हमारी आयु रहे, हम सुदृढ़ अवयवोंसे युक्त होकर आराध्य देव परमात्माके काम आ सकें।"

मरणोत्तर जीवनकी जागृति

श्रीजगन्नाथमिश्र गौड़ 'कमल'

निर्माण और विनाश सृष्टिकी ऐसी दृश्यमान घटनाएँ हैं, जिन्हें मानव प्राय: नित्य ही अपने चर्म-चक्षुसे देखते हैं। निर्माणके आकर्षक चित्र उनके मन-मानसमें हर्षकी लहरें उठाते हैं, पर विनाशकी लीला भयोद्रेकका कारण बनती है। निर्माण जीवनकी आधार शिला है। इस आधार-शिलापर भिन्न-भिन्न रूपोंमें शरीरका निर्माण होता है। यह शरीर एक परिमित अवधि तकही कायम रहता है। उसके बाद उसका अन्त निश्चित् होता है और यही अन्त विनाश है। इस प्रकार निर्माण और विनाशकी दूसरी संज्ञाएँ जन्म और मरण हैं।

जिसका जन्म होता है, उसका मरण भी अवश्यम्भावी है। इसमें सन्देह नहीं कि, निर्माणकी स्थिति विनाशकी स्थितिमें विलोपित हो जाती है। जब सारी सृष्टिही अनित्य है, तो सृष्टिके अन्तर्गत अन्य रचनाओंका स्थायित्व कैसे सम्भव हो सकता है?

जीवनके अन्तका यही अर्थ होता है कि, शरीर रूपी बन्धनसे प्राण मुक्त हो जाते हैं। सभी प्राण अर्थात् जीवात्मा अविनश्वर होते हुए भी व्यक्ति विशेषको अमरता प्रदान नहीं करते। जीवनकी दशामें रहकरही जीवात्मा अमरताकी निसेनीपर शनैः शनैः चढ़ता है और समय पाकर इतना ऊँचा चढ़ जाता है कि, मरणोत्तर भी व्यक्ति विशेषकी जीवन-ज्योति जागृतिकी दिशा दिखलाती है।

मनुष्यका जीवन संस्कारोंका विस्तृत क्षेत्र होता है। इन संस्कारोंसे युक्त जीवनमें असंख्य क्रियाएँ होती रहती हैं। इन क्रियाओंसे उद्भूत प्रेरणाएँ मानव मनपर प्रभाव डालती हैं। इसीलिए जीवनकी वास्तविक व्याख्या है संस्कार-संचय।

संस्कार दो प्रकारके होते हैं। सत्ता-समृद्ध तथा दुर्मत-प्रयुक्त। ये संस्कारही जीवन की बहुमूल्य सम्पत्ति हैं। जीवनरूपी व्यापारके द्वारा मानव संस्कार-रूपी पूँजी प्राप्त करता है। यह पूँजी कर्मामृतसे मनुष्यको अमर बनाती है। इस पूँजीके बलसे व्यक्ति विशेष की आत्मा देह-बन्धनसे मुक्त होकर उसके नामकेलिए अमरताका वरदान छोड़ जाती है।

आत्मामें अपवित्रता या लघुताका गुण-दोष नहीं होता। आत्माका एकही रूप, ऊँच नीच सभी शरीरोंमें व्याप्त रहता है। शरीरमें संलिप्त गुण दोष उसे अपने प्रभावसे अनुप्रेरित नहीं करते। एकही सूर्य्य या चन्द्रमा मन्दिर तथा शौचगृह दोनोंमें प्रकाश फैलाता है। यही बात आत्माके सम्बन्धमें लागू है। आत्मा असंग और निर्लेप है। उसे केवल कर्मानुसार संसारमें लघु या महान् स्तर प्राप्त होता है :—

सखे धन्याः केचित् त्रुटित भवबन्ध व्यक्ति करा,
बनान्ते चित्तान्तर्विषम दिषयाशीविषगता।
शरच्चन्द्रज्योत्स्नाधवल गगनां भोग सुभगां,
नयन्ते ये रात्रिं सुकृतमय चितैकशरणाः।

हे मित्र, वे पुरुष धन्य हैं, जो शरदके चन्द्रमाकी चाँदनीसे स्वेत हुए आकाश-मण्डल से सुन्दर और मनोहर रातको वनमें बिताते हैं तथा जिन्होंने संसार-बन्धनको काट दिया है, जिनके अन्तःकरणसे भयानक कर्म-रूपी विषय निकल गए हैं और जो सुकर्मोंकोही अपना रक्षक समझते हैं।

नश्वर संसार विषम भावनाओंकी क्रीड़ास्थली है। इन भावनाओंके संकेतसे पथ-भ्रष्ट हुआ मानव अमरताकी राह खोजनेमें असमर्थ होता है। उसके कर्म मिथ्या आशाके पंकमें फँसकर अन्धकारकी ओर पग बढ़ानेकेलिए बाध्य करते हैं। यह अन्धकार असत्यका रूप है। वह अवनतिके गर्तमें गिराता है। अज्ञान तमसे आवृत मनुष्य ज्ञानकी ज्योतिसे वंचित रहता है। जो सत्य है, वह धर्मका स्वरूप है। धर्मही प्रकाश है अर्थात् ज्ञान है। प्रकाशमें ही वास्तविक सुख निहित है। असत्य अधर्म है। अधर्म अन्धकार है अर्थात् अज्ञान है। उसमें दुःख और क्लेशका निवास है।

सतां सदा शाश्वतधर्मवृत्तिः सन्तो न सीदन्ति न च व्यथन्ति।
सतां सद्भिर्नाफलः संगमोऽस्ति सदभ्योभ ना नुवर्तान्तासन्तिः॥
अयिजष्टमिदं वृत्तमिति विज्ञाय शाश्वतम्।
सन्तः परार्थं दुर्वाशनापेक्षन्ति परस्परम्।

सत्पुरुषकी मनोवृति सर्वदा कर्मकी ओर ही रहती है। उन्हें कभी दुःख या खेद नहीं होता। सत्पुरुषोंके साथ जो सत्पुरुषोंका समागम होता है, वह निष्फल नहीं होता

और सत्पुरुषोंको कभी भय भी नहीं होता। इस सनातन-सदाचारका सत्पुरुप सेवन करते रहे हैं। इस प्रकार वे परोपकारमें लगे रहते हैं और उसके बदलेमें प्रत्युपकार पानेकी कभी इच्छा नहीं करते।

ऐसे सत्पुरुष अपने सत्वगुणकी प्राथमिकताके कारण दूसरोंकेलिए पथ-प्रदर्शक बनते हैं। उनका शरीर-क्षेत्र भूतदयाके फलस्वरूप सार्वजनिक हो जाता है। उनके अन्तःकरणमें प्रेमका इतना प्रकर्ष हो जाता है कि, समाज, देश या विश्व उनके प्रति आकृष्ट होता है। उनकी कीर्ति-पताका लहराती है। अपनी धवल कीर्ति-कुमुदिनीसे स्नात् होकर वे स्वच्छ और पावन बन जाते हैं। उन्हें ज्ञानका प्रकाश मिलता है और इस प्रकाशमें वे सत्कर्मोंके दुर्लभ सुमनोंको चुनकर अमरता प्राप्त करते हैं।

ऐसे सत्पुरुष प्रतिदिन मुण्डक उपनिषद्के शान्ति वाक्यको दुहराते हैं—"हे देवगण, हम कानोंसे कल्याणकारक वचन सुनें, हे पुजनीय देवों, आँखोंसे कल्याणकारक दृश्य देखें! जबतक हमारी आयु रहे, हम सुदृढ़ अवयवोंसे युक्त होकर आराध्य देव, परमात्माके काम आ सकें।'

ऐसे कर्मोंका साधन बनकरही मनुष्य जीवनोत्तर अपनी सत्व-सिद्ध आत्माके द्वारा जागृतिका सन्देश फैलाता है। ऐसा व्यक्ति जीवनकी दशामें रहता हुआ भी सोचता है —

वितीर्णे सर्वस्वे तरुणकरुणापूर्ण हृदयाः
स्मरन्तः संसारे विगुणपरिणामा विधिगतीः।
वयं पुण्यारण्ये परिणत शरच्चन्द्र किरणौ
स्त्रिया मां वेष्या मो हरचरण चिन्तै क शरणाः।

सर्वस्व त्यागकर, करुणापूर्ण हृदयसे संचार और संसारके पदार्थोंको सार ही न समझकर केवल शिवचरणोंको अपना रक्षक समझतेहुए हम शरदकी चाँदनीमें किसी पवित्र वनमें बैठेहुए दिन रात बितायेंगे। वे सोचते हैं :—

नलिनीदलगत जलमति तरलम्,
सद्ज्जीवनमतिशय चपलम्।

यह जीवन कमल-पत्रपर पड़े हुए जलकी तरह चंचल है। तथा—

दिनयामिन्यौ सायं प्रातः शिशिर बसन्तौ पुनरायातः,
कालो क्रीड़ति गच्छत्यायु तदपि न भुज्यत्याशावाःयु।

दिनरात, साँझ सवेरा, शीत और बसन्त आते और जाते हैं, कालक्रीड़ा करता है, जीवन-काल चला जाता है, तो भी मनुष्य सांसारिक आशाओंको नहीं छोड़ता।

सांसारिक आशाएँ कर्मके द्वारा जीवको ऊपर उठानेमें बाधक हैं। इनसे विलग होकरही मनुष्य सत्तुरुपका स्तर पा सकता है। इस स्तरतक पहुँचनेपर वह मरण-मृणाल

बिछाकर सोता है। मरणोत्तर भी वह जीवित रहता है और उसकी कीर्तिके प्रकाशमें दूसरे व्यक्ति, जीवनके कठिनसे कठिन रास्तेको पार करते हैं। ऐसे व्यक्ति अमरत्व-पद प्राप्त करते हैं।

अमर-पद प्राप्त करनेकेलिए जो सिद्धान्त शास्त्रोक्त वाणीमें प्रतिपादित हैं, उनका गुण-गान बुद्ध, ईसा मसीह और पैगम्बर मुहम्मद-सभीने किया है। बहुजन हिताय, बहुजन सुखायका संचार पृथ्वीपर करनेका उपदेश भगवान् बुद्धने अपने शिष्योंको दिया था। द्वेष मत करो अहंकार मत करो, इस प्रकारकी दस आज्ञाएँ दयात्मा ईसाने अपने गिरि-प्रवचनमें दी हैं। भगवान् महावीरका मत है कि, मनुष्य जाति अथवा कुलसे बड़ा नहीं होता, वह बड़ा होता है, अपने गुण और चरित्रसे। महात्मा कबीरने अपनी स्वर-शक्ति के द्वारा दया, शान्ति और सेवाका सन्देश सभी को दिया है। सिक्खोंके गुरु नानकने शुभ कर्म-आचरणपर बल दिया है। उन्होंने अपना विचार इस प्रकार व्यक्त किया है, "शरीर कीचड़से गन्दा होनेपर पानीसे धोया जा सकता है, वस्त्र मलीन होनेपर साबुनसे धोया जा सकता है। इसीप्रकार मनको निर्मल करनेका एकमात्र उपाय है शुद्धाचरण, संयम और तप। नरसी भगतने गाया है, 'वैष्णव जनतो तेने कहिए, जो पीर पराई जाने रे।'

इन सारे उपदेशोंको अपने जीवनमें उतारना, अपने जीवनको कंचन बनानेकी दिशामें कदम बढ़ानेके समान है। यह जीवन तपकर सोने जैसा खरा बनता है। ऐसे जीवनवाला मनुष्य मरणोत्तर अपनी आत्मासे अमरत्वका सन्देश देता है, क्योंकि उसकी अमरता जाग्रत रहती है।



बिरछा झलै न आपको

स्वर्गीयश्रद्धेय श्रीजुगलकिशोरजी बिरला निस्सन्देह सत्कर्मोंकी प्रतिमूर्ति थे। वे अपने सत्कर्मोंसे अमर हो गए हैं। उनके व्यक्तित्व और सम्पर्कका प्रभाव ऐसा अनुपम है कि, उनकी स्मृति पावनताकी झड़ी लगा देनेमें समर्थ है। यदि राष्ट्र, संस्कृति, और समाजकेलिए वे अपना जीवन समर्पित न किए होते तो वे कबके भुला दिये गए होते। उनकी कीर्ति पुकार रही है :—

बिरछा झलै न आपको, नदी न अँचवे नीर।
परोपकार के कारने, सन्तन धरो शरीर॥
शेष शीश धारे धरा, कछु न आपनो काज।
पर हित पर सारथि रथी, वाहक बने न लाज॥
रहिमन कबहुँ बड़ेन के, नाहिं गर्व को लेस।
भार धरैं संसार को, तऊ कहावत सेस॥



"प्रवृत्तिमें निवृत्तिमय जीवन एक कला है, जो समझ में आ जानेपर प्रवृत्ति मार्गको त्यागनेकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती। मनुष्य प्रवृत्ति में ही निवृत्तिमय जीवनका आनन्द प्राप्त कर सकता है।"

प्रवृत्ति और निवृत्ति

श्री हरिकिशनदास अग्रवाल

प्रवृत्ति और निवृत्ति जीवनके दो अंग हैं। दोनों ही जन्मको-जीवनको सार्थक करते हैं। वर्तमान युग में प्रवृत्ति अधिक बढ़ गई है। यहाँ तक कि, साधु संतोंमेंभी प्रवृत्ति मिलती है। प्रवृत्तिका होना स्वाभाविकभी है, क्योंकि समाज सेवा, लोक सेवा, लोक कल्याण और जनता की सेवा ऐसे महान् निवृत्तिमय जीवन भी कुछ न कुछ प्रवृत्ति की ओर उन्मुख रहते हैं।

मानवने जिस देश और समाजमें जन्म लिया है, उसकी भी सेवा करना महान् धर्म है, इसलिए निवृत्तिमें प्रवृत्तिका और प्रवृत्तिमें निवृत्तिका समन्वय करना ही उत्कृष्ट होगा। आजकल के प्रवृत्तिमय लोगोंको यदि बिलकुल निवृत्तिकी शिक्षा दी जायगी, तो वह एक असफल श्रम होकर ही रह जायगी, अर्थात् फलीभूत न होगी, क्योंकि उनका जीवन प्रवृत्तिमय है, उनके संस्कार इतने प्रबल नहीं कि, वे निवृत्तिमय जीवन व्यतीत कर सकें। निवृत्तिमय जीवन वही मनुष्य व्यतीत कर सकेगा, जिसके भीतर विवेक एवं षट्सम्पत्तिकी तीव्र साधना होगी। अतः जो जहाँ खड़ा है, और जो जिस बात का अधिकारी है, उसे उसी मार्ग का साधन बताना चाहिए। यदि कोई मनुष्य गृहस्थ है और व्यापार तथा उद्योग में है और उसे यह उपदेश दिया जाए कि, वह सब छोड़कर जङ्गल में जाकर धूनी रमा ले, तो यह उससे नहीं होगा। उसे आत्मप्राप्ति तो होगी नहीं, उलटे वह उसे असंभव बताकर संदेहमें पड़ जायगा। उसके अन्तर में असंभावना के संस्कार जागृत हो जायेंगे वह न इधर का ही रहेगा, न उधरका। मनुष्य जहाँ पर भी खड़ा है, उसे वहां से ही चल पड़ना चाहिए। ऐसा नहीं कि, वह पहले प्रवृत्ति मार्ग का त्याग करे। प्रवृत्ति मार्गको छोड़नेकी आवश्यकता नहीं है। वह प्रवृत्ति मार्ग पर चलता हुआ सतसंग, साधुसेवा, देश-समाज की सेवा, माता-पिता, परिवार और गुरु की

सेवा आदि निवृत्तिमय कार्यो में पूर्ण योग दे सकता है। इस प्रकार वह प्रवृत्तिमय जीवनमें ही आत्मप्राप्ति कर सकता है—अपना कल्याण ही नहीं, दूसरों का भी भला कर सकता है।

प्रवृत्तिमें निवृत्तिमय जीवन एक कला है, जो समझमें आजाने पर प्रवृत्ति मार्गको त्यागनेकी आवश्यकताही नहीं रह जाती। मनुष्य 'प्रवृत्ति' में ही निवृत्ति मय जीवनका आनन्द प्राप्त कर सकता है।

प्रवृत्तिमय जीवन तब हानिकारक होता है, जब मनुष्य उसमें आसक्त हो जाता है, अपनी वासनाओंको ही प्रमुखता देता है। जो मनुष्य सहज-सरल जीवन व्यतीत कर अपने कर्त्तव्यका पालन करता है, शरणागत बनकर ईश्वरकी आराधना करता है, आत्मप्राप्तिकेलिए गुरुजनोंका सत्संग करता है, उसे 'प्रवृत्ति' में भी 'निवृत्ति' प्राप्त है। साधु-सन्तोंका भी तो बहुत-सा समय भिक्षा माँगने, खान-पानका प्रबन्ध करने इत्यादि कार्योंमें लगही जाता है। प्रातः या सायंकाल ही, बहुतसे साधुसन्त प्रायः कठिनाईसे समय निकाल, ईश्वरका ध्यान, धारणा, और चिंतन कर पाते हैं। प्रातः सायं तो प्रवृत्ति मार्ग वाले गृहस्थ भी पूजा-पाठ और ध्यान इत्यादि कर लेते हैं। प्रवृत्ति पंथीका यदि लक्ष्य ऊँचा है, तो वह उस निवृत्ति मार्गवालेसे, जिसका लक्ष्य ऊँचा नहीं है, कई गुना ऊँचा और श्रेष्ठ है। निवृत्ति मार्ग पर चलते हुए भी यदि संशय आदि बने हुए हैं, तो वह निवृत्ति मार्ग किस काम का? सिद्धान्तकी स्पष्टता हो, तो प्रवृत्ति मार्गमें भी मनुष्य 'निवृत्ति' प्राप्त कर सकता है। प्रवृत्ति और निवृत्ति मनुष्यके बाहरी हाव-भाव या वेश-भूषा पर निर्भर नहीं है, बल्कि उसकी आंतरिक स्थिति क्या है, जिज्ञासा कितनी तीव्र है और वह करना क्या चाहता है, इस पर निर्भर है। जंगलोंमें बहुतसे ऐसे लोग रहते हैं, जिनका जीवन निवृत्तिप्रधान है, किंतु लक्ष्यकी स्पष्टता न होनेके कारण उनका सारा जीवन व्यर्थहीं बीत जाता है। इसके विपरीत ऐसे भी लोग हैं, जो घोर और असमाप्त प्रवृत्तिमय जीवनमें, प्रवृत्तिको सजग करते हुए भी अपने लक्ष्यको नहीं भूलते और यही कारण है कि, वे जीवनकी पूर्णता तक पहुँचे हुए देखे जाते हैं।

मुझे एक महात्मा 'मणिकर्ण'में मिले, जिनका नाम दर्जी बाबा था। वह सारा दिन मशीन चलाते थे और बहुत बढ़िया कोट, कमीज, पैण्ट इत्यादि सीते रहते थे। वे जब गृहस्थ थे, तबभी यही काम करतेथे। उन्होंने साधु जीवनमें भी अपनी जीविकाका किसी पर बोझ बनने नहीं दिया, बल्कि प्रतिदिन कमाई कर स्वयं भी खाते और अन्य सन्तोंकी भी सेवा करते।

मैंने उनसे प्रश्न किया कि, जब आप सारा दिन मशीन चलाते रहते हैं, तो इस प्रवृत्तिमें आपको अपना वास्तविक लक्ष्य भूल जाता होगा?

महात्माने सरलतासे उत्तर दिया—"ऐसी बात नहीं। मुझे इस बातका अभ्यास है कि, मैं ईश्वर और अपने लक्ष्यको एक पलकेलिए भी नहीं भूलता। मेरे मशीनके चलाने या

न चलानेमें इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। मुझे प्रवृत्तिमें ही निवृत्ति है।" एक और महात्मा वहीं मिले, जो प्रातः ढाई बजेही उठ जाते और स्नान ध्यान इत्यादिसे छुट्टी पाकर अतिथियों, अभ्यागतोंकी सेवामें जुट जाते। उनका सारा दिन आए गए अतिथियोंकी सेवामें बीतता। सेवाकी प्रवृत्ति में ही उनकी निवृत्ति थी।

इस प्रकारके और भी सत्संग प्रेमी हैं, जो प्रवृत्तिमें भी निवृत्तिपरायण ही हैं। प्रवृत्ति में निवृत्तिमय जीवन व्यतीत करनाही जीवनके लक्ष्यतक पहुँचनेका सही मार्ग है। अतः जो जिस स्थितिमें है, और जहाँ खड़ा है, उसे वहीं से ईश्वरकी ओर चल देना चाहिए। लक्ष्य ईश्वरकी ओर चलना होना चाहिए। यह नहीं होना चाहिये कि, हमारे कपड़े किस प्रकारके हैं और हम कहाँ रहते हैं? ईश्वरकी ओर चलनेका अर्थ है ईश्वर को निरासक्त होकर आत्मार्पण। प्रवृत्ति और निवृत्ति—दोनोंका यही केन्द्र बिन्दुहै।



मोक्ष-प्राप्तिके उपाय

योगी अष्टावक्रका कथन है—

—हे तात! यदि मोक्ष चाहते हो तो विषय-वासनाको विष समझकर त्याग दो और क्षमा, सरलता, दया, सन्तोष तथा सत्यको अमृतके समान समझकर ग्रहण करो।'

मन जब वासनायुक्त रहता है, तब वह बद्ध कहलाता है और वासनामुक्त होने पर वह मुक्त कहलाता है। कामनाएँ और वासनाएँ मानसिक व्याधि हैं। इन व्याधियोंसे मुक्त होनेका एक ही उपाय है-वह यह कि, मनको भाने वाली वस्तुओंका परित्याग कर दिया जाय। इनसे छुटकारा मिलते ही मोक्ष पद प्राप्त होता है।

जब मनुष्यके हृदयसे सांसारिक कामनाएँ दूर हो जाती हैं, तब वह अमृत हो जाता है और ब्रह्म या मोक्ष-पद प्राप्त करता है।

कुछ आचार्योंका कहना है कि, न तो कर्मसे, न प्रज्यासे और न धनसे मोक्ष मिलता है, अमृतत्व तो केवल सांसारिक कामनाओंके त्यागसे ही प्राप्त होता है।

यह ध्रुव सत्य है कि, मोक्ष-प्राप्तिके समस्त उपायोंमें भक्तिही श्रेष्ठ उपाय है।

जैसे समस्त प्राणियोंका जीवन जल है, उसी प्रकार समस्त सिद्धियोंका जीवन भक्ति है।

अतएव सायुज्य या भूमा सुख प्राप्त करनेकेलिए भगवद्भक्ति करनी चाहिये। गीतामें भगवान्‌का स्पष्ट कथन है—भक्तिके प्रभावसे जीव मुझे तत्वतः जान लेता है और अन्तमें वह मुझमें प्रविष्ट हो जाता है।

भगवद्भक्तिसे भगवत्तत्वको समझ लेना और अन्तमें ब्रह्ममें लीन हो जाना सायुज्य या मोक्ष है।

श्रीतारिणी शर्मा

"यद्यपि भगवान् इस ब्रह्माण्डके अणुमात्र में विद्यमान हैं, परन्तु जगत्को इसका भान नहीं होता और वह अपने पूर्ण रूपको प्राप्त करने की ओर सदा चलता रहता है। लेकिन वह कितना ही प्रयत्न करे, उसकी भ्रमण रेखा तो एक वृत्त के समान ही रहती है। जैसे खूंटे से बंधा हुआ बछड़ा घूम-घूमकर एक चक्कर ही बना पाता है।"

रासमय जगत्

श्रीरणधीरलाल श्रीवास्तव

शरद् पूर्णिमाकी रातमें कृष्ण भगवान् ने यमुनाके किनारे जो रासकी रचना की थी, वह सौन्दर्य तथा माधुर्यका प्रतीक ही नहीं, वरन् सत्य का सांकेतिक चिन्ह भी था। गोपियों के साथ रास की क्रीड़ा हुई, जिसको देखनेकेलिये पूरी सृष्टि ही तन्मय हो गई। इसका कारण क्या था ? क्या वह केवल भक्तों और कवियोंकी दृष्टि में ही इतना महत्त्वपूर्ण था ? भागवतके दशम् स्कंध में जहां रास का वर्णन हुआ है, उसके अन्त में लिख दिया गया है कि, रासलीलाके वर्णन पढ़ने से विकारोंपर विजय प्राप्त होती है। ग्रन्थकार ने अन्त में पाठकोंको चेतावनी दे दी है कि, जो कुछ रास में है, वह सौन्दर्य और माधुर्य से भरे रहने के कारण केवल शृंगारिक ही नहीं है, वह तो सत्य की ओर बरबस मनको खींच ले जाता है, जिससे सांसारिक शृङ्गारकी भावना नितान्त ही तुच्छ मालूम पड़ती है। लेकिन इस संकेत की तरफ बहुतों का ध्यान नहीं जाता।

रासलीलामें कृष्ण और गोपियाँ मधुर रागिनीके साथ साथ नाचती हुई रस में विभोर हो जाती हैं। गोपियोंका रोम रोम रस और आनन्दकी मस्ती से झूम उठता है और वे पूर्णरूप से तन्मय हो जाती हैं और कृष्ण के साथ एकरूपता का अनुभव करती हैं। द्वैत की भावना ही नहीं रह जाती। वहाँ तो 'द्वैत' विलीन होकर अद्वैत में परिणत हो जाता है। प्रेमकी पराकाष्ठा हो जाती है। जब प्रेमी और प्रेमिका—दो व्यक्ति नहीं रह जाते, तब दोनोंका अस्तित्व घुलकर एक प्रेम की धारामें बहने लगता है। यह प्रेमियों का आदर्श है। इसीलिये तो भक्तोंका विश्वास है कि, रासलीला गोलोक में भगवान् सदा करते रहते हैं।

सृष्टि-रचनाके पूर्व भगवान्‌के भीतर ही समस्त जगत् निहित था और भगवान् ने एकाकीपनका अनुभव किया। उनके भीतर कोई इच्छा तो थी नहीं, क्योंकि इच्छा का अर्थ ही है किसी वस्तुका अभाव। भगवान् ने इच्छा नहीं की। हो सकता है, मन बहलावके लिये ही अपने एकाकीपनको दूसरे रूपमें परिणत कर दिया हो। 'एकोहम् बहुष्यामि' और भगवान्‌के भीतर बीज रूपमें सिमटा हुआ दृश्य जगत् बरगदके पेड़के समान बाहर निकल आया, लेकिन प्रत्येक कण कणमें एक प्यास प्रथम ही भर दी गई, जिससे वह लौटकर फिर भगवान्‌में प्रविष्ट होनेके लिये सदा प्रयत्नशील रहे। यद्यपि भगवान् इस ब्रह्माण्डके अणुमात्र में विद्यमान हैं, परन्तु जगत्‌को इसका भान नहीं होता और वह अपने पूर्ण रूपको प्राप्त करने की ओर सदा चलता रहता है। लेकिन वह कितना ही प्रयत्न करे, उसकी भ्रमण रेखा तो एक वृत्त के समान ही रहती है; जैसे खूंटे से बंधा हुआ बछड़ा घूम-घूम कर एक चक्कर ही बना पाता है। जो कुछ भ्रमण शक्ति हो, भगवान्‌की ओर ही जगत् चलता रहता है और महा प्रलयके पश्चात् पुनः भगवान्‌में प्रविष्ट होकर बीज रूप हो जाता है। यही तो संसारका व्यापार है।

भगवान् से भागना चाहें हम भागें, परन्तु हम जायेंगे कहाँ? दूसरी शक्ति ही कहाँ है, जो हमको अपना सके; क्योंकि सब शक्तियों का केन्द्र तो भगवान् ही हैं। हम उसीके आकर्षण द्वारा खिंचते जायेंगे और उसी के चारों ओर चक्कर बनता रहेगा। चाहे इच्छानुसार, चाहे बिना इच्छा, हमको उसीकी परिक्रमा करते रहना पड़ेगा और रास की लीलामें सम्मिलित रहना ही होगा। प्रसिद्ध अंग्रेज कवि फ्रांसिस टामसन (Francis Thomson) अपनी कविता 'Hounds of Heaven' में ऐसी ही कल्पना करता है। वह भगवान् से भागता फिरता है। कहीं अन्यत्र चले जाने का प्रयत्न करता है और भगवान् का प्रेम कुत्तेके रूप में उसका पीछा करता है। जहाँ वह जाता है, वहीं भगवान्‌की ही सत्ता और प्रभाव का अनुभव करता है। सबको उसीके नियंत्रणमें चलता हुआ पाता है। अन्त में थककर निस्सहाय बैठ जाता है और भगवान् का प्रेमसे आलिङ्गन करता है और उसे आश्रय मिल जाता है।

यह तो रही दार्शनिक तथा काल्पनिक भावना। विज्ञानके आलोकमें इन बातों पर विश्वास कौन करेगा? विज्ञान द्वारा हमें अपूर्व शक्तिका स्रोत मिल गया है। अब हमें ईश्वरकी कल्पना करनेकी आवश्यकता ही क्या है? पर यदि हम विचार करें तो हमको आश्चर्य होगा यह जानकर कि, विज्ञान धीरे धीरे बढ़ता हुआ उसी ओर जा रहा है, जहाँ दार्शनिकोंके सिद्धान्त तथा कवियोंकी कल्पना पहले ही हमको पहुँचा चुकी है। हम असीम आकाशकी सैर करें कल्पनाके पंखों पर बैठकर नहीं, वरन् वैज्ञानिकोंके उड़न खटोलेपर। वैज्ञानिकोंका यह निश्चित् मत है कि, सूर्य्य के चारों ओर अग्नि पिण्ड (सूर्य से ही निकले हुए ग्रह) सदा चक्कर लगाते रहते हैं और पृथ्वी भी वैसे ही एक ग्रह है। घूमते हुए आकाश मण्डल में उनकी संगीत भी होती रहती है, जिसे हम इसलिये नहीं सुन सकते

कि, उस ध्वनिकी ऊँचाई हमारे श्रवणेन्द्रियोंकी शक्तिके ऊपर है। सूर्य्य का प्रभाव, आदि शक्ति, तथा ताप से सब ग्रह विशेषकर हमारी पृथ्वी कितनी अनुशासित है, यह कहनेकी बात नहीं। यह रासलीला ! यह सौर्य परिवार तो हमारे सबसे निकट है। इसके अतिरिक्त जितने तारे हैं, वे भी सूर्य्यके समानही अपने अपने परिवारमें रासलीला करते आ रहे हैं। स्वयं सूर्य्य ही एक बहुत बड़े परिवारका एक ग्रह है और इसका परिवार उस बड़े परिवार के चारों ओर चक्कर काटता है। इतना ही नहीं, यह असीम आकाशही अपने समस्त तारों और नक्षत्रोंको साथ लिये किसी अन्य शक्तिकी ओर गतिशील है। क्या वह शक्ति, जिसकी ओर आज का वैज्ञानिक संकेत कर रहा है, 'महती महीयां' वाला दार्शनिकों और भक्तों का ईश्वर नहीं है ? रास के ही ढांचेपर इस ब्रह्माण्ड की रचना हुई सी मालूम पड़ती है। आज का विज्ञान तो इसी ओर संकेत कर रहा है।

अभी तक हम दूरदर्शी यंत्रके सहारे आकाश की भेदभरी बातों पर से आवरण हटा रहे थे। अब सूक्ष्मदर्शी यंत्र द्वारा हम कुछ देखनेका प्रयत्न करें। वैज्ञानिकोंका यह मत है कि, जगत् की संपूर्ण वस्तुयें, चल तथा अचल अणुओं द्वारा बनी हैं, अर्थात् अणुओंके समूह को ही वस्तु कहते हैं। सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा अणु के भीतर केन्द्र में एक महा सूक्ष्म निहित शक्तियोंका आश्रय तथा जागृत शक्तियों का स्रोत है, जिसे अंग्रेजी भाषामें Neucleus कहते हैं। उसी केन्द्र शक्तिके चारों ओर विद्युत् परमाणु अगणित संख्या में चक्कर काटते हुए नाचते हैं और उनकी संगीत है, जिसे हम इसलिये नहीं सुन पाते कि, अति सूक्ष्म होने के कारण वह हमारे श्रवणेन्द्रियोंके परे है। उसी केन्द्रीय शक्ति द्वारा प्राप्त शक्ति से विद्युत् परमाणु इतनी शीघ्रतासे चक्कर काटते हैं। उसी केन्द्रीय शक्तिकी प्रेरणासे विद्युत् परमाणु भिन्न-भिन्न प्रकारके विचित्र मिश्रणोंमें जुट जाते हैं। संगीत और नाचके उतार-चढ़ाव बनाये रखनेके लिये वे विद्युत् अणु एक दूसरेसे मिलते और बिछुड़ते हैं, जिससे बाहरी वस्तुओंमें विषमता प्रतीत होती है। यही बाहरी विषमता ही तो इस सृष्टिकी मधुरता तथा सौंदर्य है और जब तक यह विषमता प्रतीत होती रहती है, तभी तक सृष्टिका अस्तित्व है। जिस दिन विषमता नहीं रहेगी, सृष्टि तिरोहित हो जायेगी और दृश्य का अदृश्य में लोप हो जायेगा। प्रतीत होने वाली विषमता ही तो इस सृष्टि का मधुर आकर्षण है। परन्तु वस्तुतः इस विषमताके भीतर बहनेवाली धारा तो एक ही है। संगीत तथा नाच द्वारा, माधुर्य तथा आकर्षणके लिये ही केन्द्रमें बैठा हुआ सर्व शक्तियोंका आधार और स्वामी 'Neucleus' विद्युत परमाणुओंको भिन्न-भिन्न प्रकारके ताल और लय पर नचाता और घुमाता रहता है। उस केन्द्रीय शक्ति में सोई हुई शक्तिको उभार दिया जाय तो पूरे विश्व का सर्वनाश हो जाय। ऐटमबम (Atom bomb) अणुबम भी तो ऐसी ही कुछ केन्द्रीय शक्ति का उभार है।

प्रत्येक अणु में इन्हीं विद्युत् परमाणुओं का नाच, संगीत के ताल पर चल रहा है। संसारके कण-कण में वही नाच गान हो रहा है। हमारा शरीर भी तो कणों से बना

है। उसकेभी भीतरके प्रत्येक कणमें वही नाच और गान, वही रास की लीला। 'अणु अणियाम्' वाला भगवान् अणुके केन्द्रमें बैठा हुआ विद्युत् परमाणुओंका नाच करा रहा है। गोलोक में रासलीला होती होगी, इसकी चर्चा ही क्या ! अब तो हमारे भीतरके असंख्य अणुओंके भीतर रासक्रीड़ा निरन्तर हो रही है। हम इसे देख सकते और सुन सकते हैं। हमारी उँगुलियोंके अणुओं में कैसा संगीत हो रहा है, उसको हम ग्रामाफोन के तावे (Plate) पर रेकर्ड करा सकते हैं। मानव की उँगुलियोंके भीतर होने वाला संगीतका भी रेकर्ड तैयार हो गया है।

रासलीला के सिद्धान्त पर ही ब्रह्माण्ड की रचना हुई है। यमुनाके किनारे होने वाली रास से अव हम नाक-भौं नहीं सिकोड़ सकते। उसी रासलीला से तो हमारा शरीर बना है और हमारा पूरा अस्तित्व उसी सिद्धान्त पर आश्रित है। कृष्ण रसिया अवश्य हैं, पर वह तो अनोखे रसिया हैं। यह ब्रह्माण्ड ही रास के चक्कर में है। कृष्णकी रासलीला कितनी सांकेतिक है और कितनी तत्वपूर्ण है, इसका अनुमान सहज ही में किया जा सकता है!



सबके प्रश्न, सबके उत्तर

सुख से कौन सोता है ? समाधिनिष्ठ। जाग्रत कौन है ? सत्-असत् का विवेकी। शत्रु कौन है ? अपनी इन्द्रियाँ, परन्तु जीत लेने पर वे ही इन्द्रियाँ मित्र बन जाती हैं।

दरिद्र कौन है ? जिसकी तृष्णा बढ़ी हुई है। धनी कौन है ? जो पूर्ण संतोषी है। जीता ही कौन मर चुका है ? उद्यमहीन। जीवित कौन है ? जो भोगों से निराश है।

फाँसी क्या है ? ममता और अभिमान। मदिरा की भाँति मोहित कौन करती है ? नारी (काम शक्ति)। महान् अंधा कौन है ? कामातुर। मृत्यु क्या है ? अपना अपयश।

गुरु कौन है ? जो हित का उपदेश करता है। शिष्य कौन है ? जो गुरु का भक्त है। लम्बा रोग क्या है ? भव रोग। उसको मिटाने की दवा क्या है ? असत्-सत्का विचार।

भूषणों में उत्तम भूषण क्या है ? सच्चरित्रता। परम तीर्थ क्या है ? अपना विशुद्ध मन। कौन वस्तु हेय है ? कामिनी-कांचन। सदा क्या सुनना चाहिये ? गुरु का उपदेश और वेद वाक्य। ब्रह्मकी प्राप्तिके उपाय क्या हैं ? सत्सङ्ग, दान, विचार और संतोष। संत कौन हैं ? जो समस्त विषयों से बीत राग हैं, मोह रहित हैं, और शिव स्वरूप, ब्रह्म तत्त्वमें निष्ठावान् हैं। प्राणियोंका ज्वर क्या है ? चिन्ता। मूर्ख कौन है ? विवेकहीन। किसको प्रिय बनाना है ? शिव-विष्णु भक्ति को। यथार्थ जीवन क्या है ? जो दोष वर्जित है।

जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य

जीवनके परमोद्देश्यको दृष्टिमें रखकर
शिक्षा-प्रणालीकी विवेचना

"जिस प्रकार आवृत लोहेके सन्दूकके भीतर प्रज्वलित प्रदीप रहने पर भी, उसकी रश्मि बाहरसे दीख नहीं पड़ती है, उसी प्रकार मानवका सत्तागत, ज्ञानालोक भी अज्ञानसे आवृत रहता है। पवित्रता तथा निःस्वार्थपरताकी सहायतासे हम शनैः शनैः उस अस्वच्छ आवरणको हटा सकते हैं।"

अमृताभियानमें मनुष्य

श्री फणीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय

कलकत्ता शहरके किसी रास्तेकी घटना है "एक पंडितजी किसी देवमन्दिरमें श्रीमद्भागवत्की कथा बाँचनेके लिए जा रहे थे। रास्तेके किसी किनारेपर एक अच्छे पढ़े-लिखे नवयुवक खड़े थे। युवकने पण्डितजीसे प्रश्न किया—'पण्डितजी, क्या केवल कथा बाँचने से देशवासियोंके सभी कष्ट, समस्त दुःख प्रशमित हो जायँगे ?" 'जी, होकर रहेंगे'—यह उत्तर देकर पण्डितजी अपने गन्तव्य स्थानकी ओर बढ़ गए, युवकभी मौन रह गये।" यह लेखककी स्व-चाक्षुस्, एवं स्वयंश्रुत घटना है।

वर्तमान पाश्चात्य उद्भावित शिक्षा-पद्धति ही उपर्युक्त युवकके मनमें उस प्रश्नकी जनयिश्री है। ऐसा कहना धृष्ठता न होगी कि, इस समय सारे विश्वमें पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति प्रसारित है, जो अस्वाभाविक और स्वार्थकेन्द्रिक है। यह उक्ति मेरे मनका अलीक कल्पना-विलास नहीं है, नैतिक, युक्ति-सिद्ध है। इस युक्तिका आधार पाश्चात्य मनीषी Bertrand russel प्रणीत Human society and politics है। इस ग्रन्थके स्थान-विशेषपर उन्होंने लिखा है :—

But schools are out to teach patriotism, newspapers are out to stir up excitement, and politicians are out to get reelected,

सभी विद्यालयोंका झुकाव अब उग्र देश प्रीतिकी शिक्षा देनेकी ओर है, सभी संवाद पत्र अब उत्तेजन-प्रवण संबादके प्रकाशनमें तत्पर हैं ;और राजनीतिकोंका ध्यान अब इसी ओर है—ताकि भविष्यमें वे पुनः चुनावमें विजयी हों।

ठीक, इससे आगे चलकर उन्होंने लिखा है कि, इन तीनोंमें कोई भी मानवजातिकी, पारस्परिक आत्महत्यासे रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हैं। रसलकी इस उक्तिका अर्थ है कि, पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति स्वार्थकेन्द्रिक है। वह विरोधीको कलंकित करने तथा दोषी प्रमाणित करनेकी, और तदनन्तर विपर्यस्त करनेकी, तथा विध्वंस्त करनेकी, प्रेरणा देती है। इसीलिए आजके संघर्षोन्मुख विश्वके सभी सहानुभूतिशील व्यक्तियोंके अनुभूति-प्रवण हृदयमें विविध महा प्रश्न उद्भसित होने लगे हैं, उनमें प्रधान हैं—"क्या संघर्षके प्रतिकारकेलिए संघर्ष ही प्रकृष्ट साधन है, क्या किसी व्यक्तिको, किसी जातिको, किसी सम्प्रदायको घृणाकी दृष्टिसे देखकर ही हम मानव समाजमें शान्तिकी प्रतिष्ठा करनेमें समर्थ होंगे ? इन प्रश्नोंका उत्तर भी रसलकी लेखनीने दिया है—

I don't know whether any body deserves to be hated, but I do know that hatred of those whom we believe to be evil is not what will redeem mankind.

रसलकी इस सद्युक्तिकी प्रतिध्वनि Barie pasternak रचित Doctove zhivago नामक उपन्यासमें है। इस उपन्यासका प्रधाननायक Doctor Zhivago है। झिवागो रेलगाड़ी पर कहीं जा रहे थे। वे सहयात्रियोंसे कहने लगे:—

I used to be very revolutionary, but now I think that nothing can be gained by violence. People must be drawn to good by goodness.

मैं भी भावकी दृष्टिसे विप्लवी था, किन्तु अब समझमें आ गया है कि, हिंसा विलकुल लाभप्रद नहीं है। लोगोंको कल्याणकी ओर आकृष्ट करनेकेलिए सद्भावही अत्युत्तम साधन है। डाक्टर झिवागोकी कंठध्वनिमें भारतके शाश्वत आदर्शकी भाषा प्रतिध्वनित, प्रतिविंबित है। अपने कल्याणके निमित्त, विश्वकी जनताको अपने जीवनके रूद्ध द्वारको खोलकर सादर, आह्वान पूर्वक अपनाना पड़ेगा-भारतकी प्रकृत प्रज्ञाके उस आलोकको, जिसकी द्युतिसे अतीत में केवल पुण्यभूमि भारतवर्ष ही नहीं, बल्कि विश्वके सभी देश भी उद्भासित हुये थे,आलोकित करना होगा। सुदूर, अतीतके भारतीय सत्यद्रष्टा ऋषियोंने शिक्षा तथा मानवका एकमात्र उद्देश्य, 'भूमा' लाभ को निर्देशित किया था—

यो वै भूमा तत् सुखं, नाल्पे सुखमस्ति।
भूमैव सुखं, भूमात्वेव विजिज्ञासितव्य इति॥

—जो भूमा है, जो विराट् एवं महान् है, केवल वही सुख है; जो अल्प है, जो क्षुद्र और संकीर्ण है, उसमें सुख नहीं है, केवल 'भूमा' को ही जाननेकी इच्छा करो।

इसका अर्थ केवल यही है कि मनुष्यत्वकी महिमा, समीसत्ताका पूर्णतम विकास ही मानव जीवन तथा विद्या और शिक्षाका उद्देश्य है। परीक्षामें उत्तीर्ण होकर नौकरी-प्राप्ति

अथंच धनार्जन करना नहीं। आत्मोपलब्धि, आत्मोन्नति, आत्मविकास विद्यालयका लक्ष्य होना नितान्त आवश्यक है। मानवका प्रकृत मनुष्यत्व तथा उसकी समग्र सत्ताका सर्वतोमुखी विकास ही आत्मविकासका अर्थ है। आज शिक्षाकी सहायतासे मनुष्यत्वका विकास साधित नहीं हो रहा है। इसीलिये इस समय तथाकथित शिक्षित व्यक्तियोंमें प्रकृत मनुष्यत्वका दर्शन नहीं हो पाता है।

शिशु ही देशका भविष्य है। शिशु शैशवसे ही सुशिक्षा प्राप्त कर सकें—इसके लिये उपयुक्त उपाय उद्भावनमें अकृतकार्य होनेसे स्वतन्त्र भारतकी एकभी समस्याका समाधान न हो सकेगा। सभी प्रकारेण हम दुःखसे प्रपीड़ित ही होते रहेंगे, न अन्नाभाव और न तो स्वास्थ्याभाव प्रशमित होंगे, फिर बुद्धि अपरिमार्जित रह जायगी, और चरित्रमें संशोधन न होगा।

मनुष्यत्व प्राप्तिके लिए शिक्षा ही एकमात्र माध्यम है। इसके लिये शिक्षा-पद्धतिमें परिवर्तन लाना अनिवार्य है। इससमयकी शिक्षा तो पुस्तकोंमें ही सीमित होकर रह जाती है। आजकी शिक्षाका आधार भौतिकवाद है। इसके बदले नीति, धर्म और संस्कृतिकी भित्तिके ऊपर एक पूर्णांग, शिक्षापद्धतिकी स्थापना अपरिहार्य है। आजका युग तो अत्युग्र, भौतिक विज्ञानकी प्रगतिका युग है। इस भौतिकवादके युगमें शिक्षाके पवित्र क्षेत्रसे नीति, धर्म और संस्कृतिको मानो, हमने नमस्कार सा कर रखा है। भौतिकवादके बदले अध्यात्मवादको, वस्तुतन्त्रवादके बदले आदर्शवादको, अर्थाधिकारके बदले नैतिक अभ्युन्नतिको स्थापित करनेमें असमर्थ होंगे, तो हमारी शिक्षा प्रणाली फलप्रसून होकर, व्यर्थ मात्र रह जायगी।

वर्तमान कालमें नीतिमूलक शिक्षा-प्रणाली प्रवर्तित करनेकी विशेष आवश्यकता है; क्योंकि विद्या बुद्धि और नीति, ज्ञानके बीच जो इतस्तेर सम्पर्क है, वह वर्तमान विश्वसे प्रायः विलुप्त होनेपर आ पहुँचा हैं। यही कारण है कि आधुनिक शिक्षा-प्रणाली द्वारा उच्च शिक्षित ज्ञान-विज्ञानमें दक्ष 'ज्ञानगुणिगण सज्जन प्रकट तो नहीं हो रहे हैं, विलुप्त होते जा रहे हैं। आजके लोग तत्वज्ञान लाभको अश्रेयस्कर समझते हैं। तत्वज्ञानको पुण्य एवं निष्काम कर्म में परिणत तथा प्रकाशित करना मानों उनके लिए दुःसाध्य सा है। अतएव ज्ञान और कर्म के बीच क्रमशः दुस्तर व्यवधान आविर्भूत होता जा रहा है। प्राचीन भारतकी शिक्षा और नीतिमें, ज्ञान तथा कर्ममें अविच्छेद्य सम्बन्ध था। उच्चतम शिक्षा एवं विविध प्रकारके ज्ञान-दान प्रदानके पश्चात्‌ही छात्रको गुरु गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेकी अनुमति देते थे। योग्यछात्रको ही गृहस्थाश्रममें प्रवेशका अधिकार मिलता था। समावर्तनके अवसरपर गुरु, सरलतम नीति ज्ञान प्रदानके प्रसंगमें निम्नांकित अमृत वाणीके द्वारा छात्रको सजग करनेमें पराङ्मुख न हो सके—

"सत्यंवद धर्मं चर................
मातृदेवो भव, पितृदेवो भव................

श्रद्धया देयम्, अश्रद्धया अदेयम् ॥

सत्यकथन, धर्माचरण, मातृ पितृ-भक्ति और श्रद्धापूर्वक दान,प्रभृति साधारण कर्मोंसेही अर्जित ज्ञानकी परीक्षा होगी। उस परीक्षामें उत्तीर्ण होनेकी असमर्थतापर ज्ञान सदाकेलिए प्रात्यहिक जीवनसे वंचित रह जायगा और दृष्टिमें चकाचौंध उत्पन्न करेगा।

धर्ममूलक शिक्षाप्रणालीको प्रवर्तित करनेके प्रस्तावसे हमारे धर्म निरपेक्ष राष्ट्रके नेताओंमेंसे कुछ सम्भवतः दुविधामें पड़ जायेंगे। किन्तु धर्म और सम्प्रदाय, तत्व और घमंड (Phrisaism) के तात्पर्यमें अन्तर है। प्रकृत धर्मतत्वकी शिक्षा किसी तरहसे साम्प्रदायिकता और घमंडकी जनयित्री नहीं है।

पाश्चात्य भू-भागका जो भौतिक विज्ञानवाद विश्वजनको धर्मविमुख करनेमें प्रयास रत है, उसके प्रथित और ऐतिहासिक मनीषी Toynbee (ट्रानवी) ने an Historians Approach to Religion में लिखा है :—

The true purpose of a higher religion is to radiate the spiritual counsels and truths that are its essence into as many souls as it can reach, in order that each of these souls may be enabled thereby to fulfil the true end of Man. Man's true end is to glorify God and to enjoy Him for ever.

उच्च स्तरकेलिये सभी धर्मोंका लक्ष्य यह है कि. उनमें जो आध्यात्मिक सत्य है, उसे यथासंभव अधिकसे अधिक नरनारियोंके पास पहुँचा दिया जाय,जिससे वे मानव जीवनके प्रकृत उद्देश्यको जीवनमें उतार सकें। मानव जीवनका प्रकृत उद्देश्य है कि ईश्वरकी महिमाका कीर्तन करना, उनके अनिर्वचनीय आनन्दमें चिरमग्न रहना—

अद्वेष्टा सर्व भूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

सर्व भूतोंमें द्वेष भावसे रहित एवं स्वार्थ रहित, सबका प्रेमी और हेतु रहित, जो दयालु है, ममता एवं अहंकारसे रहित है, सुख दुःखोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान् है, अपराध करनेवालेको भी अभय देने वाला है, ध्यानयोगसे युक्त निरन्तर लाभ हानिसे सन्तुष्ट रहता है, मन और इन्द्रियों सहित शरीरको वशमें किये हुए दृढ़ निश्चय करता है, वह मुझमें अर्पण किये हुए, मन बुद्धिवाला मेरा भक्त ही मुझे प्रिय है।

अब तो सुस्पष्ट हो गया है कि, महत्वकी ओर, पूर्णताकी ओर, प्रवृद्धिकी ओर, परि-व्याप्तिकी ओर मानव जीवनका जो अप्रतिहत अभियान अनादिकालसे जारी है, वही धर्मका यथार्थ तात्पर्य है। इसीको निर्भयतापूर्वक जीवनके गम्भीरतम प्रदेशमें पुनः स्थापित करनेकी आवश्यकता है।

संस्कृतिमूलक शिक्षा-पद्धतिकी सहायतासे ही आत्माका सुसंस्कार सम्भव होगा। जिस मलिनता, जिस क्लेद और जिस अन्धकारने हमारी अमृतस्वरूप, ज्योतिर्मयी आत्माको आवृतकर रखा है, उसे अपसारित करना है। इसके सहायक हैं—ज्ञान, भक्ति, प्रेम, सेवा-प्रमुख सद्गुण एवं सुकर्म समूह। ये सभी हमारे अन्तरके अन्तःस्थलमें निहित हैं, उन्हें पुनः प्रदीप्त करना है। साधन ?

विवेकानन्द स्वामीजी महाराजने कहा है कि, हमारे अन्तरका दिव्यालोक आवृत होकर रहता है। जिस प्रकार आवृत लोहेके सन्दूकके भीतर प्रज्वलित प्रदीप रहने परभी उसकी रश्मि बाहरसे दीख नहीं पड़ती है, उसी प्रकार मानवका सत्तागत ज्ञानालोकभी अज्ञानसे आवृत रहता है। पतिव्रता तथा निःस्वार्थपरताकी सहायतासे हम शनैः शनैः उस अस्वच्छ आवरणको हटा सकते हैं।

सुतरां, संस्कृतिमूलक शिक्षाकी भित्ति न तो विदेश और नहीं किसी स्वार्थपर उद्भवित होगी, अपितु: स्वतः स्फूर्ति होगी, नवीन गुणोंकी सृष्टिके लिए नहीं, वरन पूर्व निहित गुणोंके प्रकाशके लिए इस प्रसंगमें भी विवेकानन्द स्वामीजीने कहा है कि किसीने कभी दूसरेकी सहायतासे शिक्षाकी प्राप्ति नहीं की, सबने स्वयं अपनेको शिक्षित किया है। बाहरी शिक्षक अन्तरके शिक्षकको जाग्रत करनेके लिए मात्र उपाय स्वरूप है, अन्तरका शिक्षक ही यथार्थ ज्ञान दाता है।

निष्कर्ष वह है, कि सत्य शिक्षाके लिये प्रधानत आधार यह है —नीति, धर्म और संस्कृति। सत्य शिक्षा इन तीनोंका समन्वय मात्र है—कर्म, ज्ञान और भक्तिका। सत्य शिक्षा नीति रूप कर्म, धर्मरूप भक्ति, संस्कृतिरूप ज्ञानका एक अपूर्व मिलन है। पुण्यभूमि भारतका मूल मन्त्र है 'सत्य मेव जयते'। इसी सत्यके आश्रयमें आश्रित होकर हमें आज इस वैदिक प्रार्थनाको अन्तरके स्वरोंमें उच्चरित करना होगा—असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय।

हमें असत्यसे सत्यकी ओर ले चलो, अन्धकारसे आलोककी ओर ले चलो, मृत्युसे हमें अमृतकी ओर ले चलो।

यही हमारे जीवनका—हमारी शिक्षाका लक्ष्य हो, तो फिर उस आनन्दके दर्शन हो सकेंगे, जिसके लिए हम प्रयत्नशील हैं।

तत्वज्ञानको सुस्पष्ट करनेवाली भावपूर्ण लघु कथा

"जीवनमें अमोलन सुयोग्य प्राप्त होनेपर उनका समुचित उपयोग करनेवाला ही ध्येयकी सार्थकताको लब्ध कर पाता है। शाश्वतिक तत्वोंका संचय केवल वही प्राणी कर सकता है, जो नित्यानित्य वस्तुओंका सूक्ष्म विवेक रखता हो।"

जीवनका कल्पतरु

श्रीकृष्णमुनि प्रभाकर

भीषण आतपसे सन्त्रस्त होने पर भी गन्तव्य-पर्यन्त पहुँचनेकी उत्कट चाहनाको चित्तमें सँजोये दृढ़-निश्चयी पथिक अमाप और बीहड़ डगरको चीरता हुआ अविश्रान्त बढ़ता चला जा रहा था। दिनकरकी भयंकर उष्णताने वन्य-प्रदेशकी नीरसताको इतना अधिक तापित कर दिया कि, पथिककी सम्पूर्ण देह-यष्टि ही नहीं, अपितु अन्तरात्मा भी क्लान्त हो उठी। परन्तु फिर भी वह हतोत्साहित नहीं हुआ। ऊँची-नीची पगडण्डियोंको रौंदते हुए उसके गतिशील पग विचलित होते-होते शान्त समीरके एक तीव्र झोंकेको पाकर पुन: सुस्थिर हो उठे। वृक्षोंके घने झुरमुटको अवलोककर पथिकने भी सुदीर्घ सांस ली—"चलो, कुछ तो राहत मिलेगी!" एक मधुर झुरझुरी-सी उसके सारे बदनमें दौड़ आयी और अगले ही क्षण वह एक सघन, फलदार वृक्षके नीचे खड़ा था।

रम्य वातावरणने पथिकके भीतर आलस्यका भाव जाग्रत कर दिया। पथीय संक्लेशोंकी स्मृति उसके थकित मस्तिष्कमें उभरी और एकबारगी पथिक जड़ीभूत हो गया।

—"कुछ क्षण विश्रान्ति ले ली जाय, तो देहका समस्त श्रम-शैथिल्य जाता रहेगा और मंजिलतक पहुंचनेकेलिए स्फूर्तिदायक नवचेतनाका भी संचार हो जायगा।"—सामने बड़ी लम्बी डगरकी ओर आशा और उत्साहसे दृष्टिपात करता हुआ वह स्वयमेव बुदबुदाया। शीतल वायुके मुग्धकारी, श्रम-निवारक थपेड़ोंने पंथीकी श्रान्तिको द्विगुणित कर दिया। वृक्षके त्राणमें निर्मुक्त-भावसे तन्द्रा लेनेकी लालसाको वह अधिक शमित न कर पाया और तत्क्षण ही समग्र चिन्ताओंसे विरहित होकर उसकी काया छायाके शीतल क्रोड़में प्रसुप्ति पा गयी।

दिनकर अस्ताद्रिको प्रयाण करनेकी तत्परतामें अपना रथ लौटा चुका था, परन्तु फिर भी आलस्यने अपने डनोंकी मदभरी छायाका अवगुण्ठन नहीं उतारा। निद्रालसकी जड़तामें आवद्ध हुआ पथिक पाँव पसारे पसरा ही रहा। चिर विलम्वतक वह इसी प्रकार निद्राभिभूत पड़ा ही रहता, यदि वृक्षकी शाखासे दाड़िमी रंग लिये कुछ पक्व फल उसकी स्थूल देहपर न आ गिरते।

पथिक तुरत हड़वड़ाकर उठ वैठा। फुरतीसे हाथ वढ़ाकर फलोंको उसने उठा लिया। उनकी आकृति और मनभावनी बनावटको निरख रीझ गया पंथी।

एकाएक उसके नेत्र ऊपर वृक्षकी गझिन शाखाओंमें उलझ गये, जिनपर असंख्य फल लटके वायुके संवेगसे उन्मत्त क्रीड़ा कर रहे थे। उसके आश्चर्य-विस्फारित नेत्र-पट खुले-के-खुले रह गये।

पथिकका ध्यान भंग हुआ, तो हाथके फलोंने अन्तरकी वुभुक्षाको जागृत कर दिया। उन अपूर्व फलोंको चखनेकी लालसा उसमें बलवती हो उठी।

मुख रसास्वादको अभी पूर्णतः लील भी न पाया कि, पथिकके वदनपर हर्ष और उत्साहकी लालिमा दौड़ आयी। वैसे अप्रतिम फल पहले उसने न कभी देखे थे, न सुने थे और न चखे ही थे। अलौकिक आस्वादकी अनुभूति-सी प्रतीत हुई उसे। तृप्ति-पर्यन्त वह जुटा रहा। उदरने जव और अधिक भार वहन करनेकी अस्वीकृति डकारकी अरुण-पताका दिखाकर दे दी, तो एक प्रदीर्घ जम्हाई लेते हुए वह उठ खड़ा हुआ।

रवि अपने रथचक्रोंकी गति अविरल तीव्र करता जा रहा था।

पथिकको भी जैसे कुछ स्मरण हुआ। आगे बढ़नेकी उत्कण्ठा सजग हुई। गन्तव्यकी भग्नताको जोड़ते हुए पथीके पांव गतिमय हुए। संवेग वह मार्गकी ओर उन्मुख हो गया।

—"अरे ओ बटोही! तनिक रुको तो।"—पीछेसे आतुर पुकार आई, तो अचकचाकर वह थम गया। 'इस बीहड़ बनमें कौन हो सकता है?'—शंकाका प्रश्नचिह्न उसकी संकुचित भौंहोंपर उभर आया—"कहाँ हो भाई? कौन हो? किसलिये पुकार रहे हो?'

एक साथ तीन प्रश्न विस्मयाक्रान्त वाणीसे प्रस्फुटित हुए।

गम्भीर हास्यकी ध्वनि समीरमें विकम्पित हुई। वातावरण लहलहा उठा। उपालम्भके स्वर तरंगित हुए—"भूल भी गये? जिसके आनन्ददायी क्रोड़में प्रसुप्तिसे अपने दीर्घ पथके श्रमको निवृत्त किया, जिसके अमृत-फलोंको चखकर अपनी चिर-बुभुक्षाको परितृप्त किया और मार्गारूढ़ होनेकेलिये चेतना प्राप्त की, उसका शाब्दिक उपकार मानना तो दूर,

उसे पहचाननेमें भी मानवीय छद्मताका उपयोग ?........अभी तो दो क़दम भी आगे नहीं बढ़े हो !"

हड़बड़ा गया पथिक। उसे अपनी चूकका भान हो आया—"हाँ भई, वास्तवमें मुझसे अनजाने गलती हो गयी। जो उपकार करे, उसका कृतज्ञ तो होना ही चाहिये। मानवीय सभ्यताका विधान भी यही है। और फिर, तुमने तो मुझे शारीरिक ही नहीं, अपितु मानसिक सन्तापसे भी निवारित किया है। किस विध तुम्हारे ऋणको शाब्दिक रूप दूँ, यही समझ नहीं पा रहा।"

पथिककी परिवर्तित मुद्राने वृक्षको इतना प्रमुदित कर दिया कि, उसकी एक-एक शाखा स्पन्दित हो उठी—"बड़े चंट हो ! बातें भी खूब बनानी आती हैं, तुम्हें ! मेरे आश्रयमें आये हो, इसलिये चाहता हूँ कि कुछ माँगो। जानते हो, मैं कल्पवृक्ष हूँ। लोगोंके मनोरथ पूर्ण करता हूँ। जो माँगोगे, तुम्हें भी वह तत्काल दूँगा। हाँ, जो।"

लौट आया पथी उसीकी छाया-तले—"तभी तो मैंने भी सोचा कि, इतने सुस्वादु और मधुर फल, जो अन्यत्र कभी देखने-सुननेमें नहीं आये, तुम्हें कैसे फले ? कुछ रहस्य होना ही चाहिये !........भई, मुझे कुछ नहीं चाहिये, सभी-कुछ है मेरे पास !........फिर भी, यदि तुम देना ही चाहते हो, तो इसी तरहके पके अपने कुछ और फल ही दे डालो। मार्गमें काम आयेंगे........।"

कल्पवृक्षने विशाल पर्णोंको तीव्र झकोरा देकर एक बार पुनः अपनी उपहास-ध्वनि वायुमें छितरा दी और यह कहते हुए पथीके सम्मुख फलोंका अम्बार खड़ा कर दिया—"नादान कहींका ! चटोर ने मांगे भी तो क्या—अस्थायी स्वादवाले अकिंचन फल ! कुछ और माँगता, जिसका उपयोग जीवनमें भी किया जा सकता। पर, स्वाद-लोलुपता भी कहीं जा सकती है ?........लालची खानेका......."

पथिकने सुना, तो जैसे उसके हाथ-पाँव पथरा गये। बोलती बन्द हो गई। स्वेद-बिन्दु उभर आये उसके सारे बदनपर। वह कुछ सुस्थिर होता कि, उससे पूर्व ही कल्पवृक्ष अन्तर्ध्यान हो गया और सारा प्रदेश पुनः वीरान-सा हो उठा।

अन्धकारको पाँव पसारते देख फलोंको बिना बटोरे पथिक भी लज्जित-सा मार्गपर उतर आया।

× × × ×

कथा-तत्वके सन्दर्भमें मेरे धर्मशास्त्रका विवेचन है कि, अकेला वह पथी ही नहीं, अपितु भौतिक-जगत्के समस्त जिह्वा-स्वादके लोलुप प्राणी भी इसी प्रकारके बहुमूल्य अवसरों को लालचवश हाथसे गँवा बैठते हैं।

—:※:—

"वावूजी महान् आत्मा थे, महान् कर्मयोगी थे। वे धर्मके प्रचार-प्रसार के लिए ही भारतभूमि में अवतरित हुए और धर्मका प्रचार-प्रसार करते हुए ही ब्रह्ममें लीन हो गए। उनके द्वारा वनाए गए अतिथिगृह और देवमन्दिर युगों तक उनकी कीर्तिको स्थिर रखेंगे और उनकी यश-पताका उड़ती रहेगी।"

धर्म पुरुषकी स्मृतिमें

श्रीमदनमोहन शर्मा

आज २४ जून, ६८ को श्रद्धेय वावूजीको ब्रह्मलीन हुए एक वर्ष वीत गया। लेकिन कभी-कभी ऐसा अनुभव होता है कि, अभी वावूजी मौजूद हैं और यहीं आसपास हैं। उनकी वही वातें, उनका वही हँसमुख चेहरा सामने प्रतीत होता है। उनकी वे अविस्मरणीय वातें कभी भी स्मृति-पटलसे ओझल नहीं होतीं। अतुल प्रेम था उनमें। वही प्रेम, जो पुत्रके प्रति पिताके हृदयमें होता है, सेवकके प्रति सहृदय स्वामीके मनमें होता है। बाबूजी वात्सल्यकी मूर्ति थे, साक्षात् वात्सल्य ही थे।

वावूजी एक महान् कर्मयोगी और तपोनिष्ठ थे। दया और धर्मकी तो वे साक्षात् प्रतिमूर्ति ही थे। हिन्दू जाति, धर्म, और संस्कृतिपर युगोंतक उनका उपकार लदा रहेगा। हिन्दू धर्मकी वे विशद व्याख्या करते थे। वे एक ही पेड़की शाखा-प्रशाखाओंकी तरह सनातनी, आर्यसमाजी, बौद्ध, सिक्ख, जैन आदिको हिन्दू धर्मका अंग-प्रत्यंग मानते थे। वे महान् थे, अति महान् थे।

श्रद्धेय वावूजी ने अपने ढङ्गसे हिन्दू जातिके सभी अंगोंकेलिये जगह-जगह मन्दिर, धर्मशालाएं, कुंए, तालाब आदि बनवाये तथा साधु सन्तोंकेलिये जगह-जगह सदाव्रत, अन्न-क्षेत्र खुलवाये। दिल्ली, काशी, कुरुक्षेत्र, पटना, मथुरा आदि तीर्थस्थानोंमें विशाल मन्दिर, धर्मशाला आदिका निर्माण कराया। वे प्रायः सभी मन्दिरोंका समय-समयपर स्वयं निरीक्षण किया करते थे और देखा करते थे कि, कहीं मन्दिरमें कोई आवश्यकता तो नहीं है, तथा मरम्मत आदिका भी यथोचित आदेश दिया करते थे। सर्दी, गर्मी, वर्षा, धूप की चिन्ता किये विना स्वयं मन्दिरोंके निरीक्षणकेलिए आया करते थे।

श्रीगीता मन्दिर मथुराके भगवान् चक्रधारीसे उनका विशेष प्रेम था । उनके सम्बन्ध में वे विशेष पूछताँछ किया करते थे । एकबार पूछा कि, आप भगवान्की आरती-पूजा किया करते हैं, कभी स्वप्नमें 'दर्शन' भी देते हैं क्या ? मैंने उत्तर में निवेदन किया कि, "कभी कोई खास बात तो नहीं हुई । मैं स्वप्नोंपर विशेष ध्यान भी नहीं देता । मेरा अपना विश्वास है कि, मनुष्य दिन में जो काम करता है, रात्रिमें उसे उन्हींका स्मरण हो आता है ।" परन्तु बाबूजीकी भगवत्सम्बन्धी स्वप्नोंमें दृढ़ आस्था थी । उन्होंने कहा, आपको कभी कोई स्वप्न हुआ है क्या ? मैंने निवेदन किया, "कुछ दिनों पूर्वकी बात है, रात्रिके अन्तिम प्रहरमें ऐसा आभास हुआ कि, मैं भगवान्की आरती कर रहा हूँ तथा प्रसन्नचित्तसे भगवान्के मुखारविन्दकी ओर टकटकी लगाकर देख रहा हूँ । तभी लगा कि, भगवान्की मूर्ति छोटी होती जा रही है और होते-होते इतनी छोटी हो गई कि, गोदके बच्चे के बराबर । मैंने आरती छोड़ बच्चेको गोद में उठाया तो, आँखें खुल गयीं । देखता हूँ कि, मैं खाट पर हूँ ।" सुनकर बाबूजीने कहा कि, आपको कितने बच्चे हैं ? मैं उत्तर के लिये तैयार नहीं था । सोचा कि, बाबूजी ने क्यों प्रसङ्ग बदल दिया ? कुछ संकोच के साथ बोला कि, तीन लड़कियाँ हैं । बाबूजी ने कहा कि, अब की बार लड़का होगा । जब बच्चा हो तो मुझे पत्र लिखें । पाँच-छः माह पश्चात् लड़का हुआ । मैंने इसकी सूचना पत्र द्वारा बाबूजी को दी ।

दो वर्ष पूर्व मुझे एक स्वप्न और हुआ, जिसे मैंने बाबूजीसे निवेदन किया । बाबूजी द्वारा विस्तृत रूप से जाननेकी इच्छा प्रकट करने पर मैंने कहा 'पहलेकी ही तरह मैं आरती कर रहा था । आरतीके बीचमें ही आभास होता है कि, भगवान्का मुकुट गिर गया है । मैं आरती छोड़ मुकुट सँभालने लगा । पर मुकुटको सँभाल न सका । मुकुट गिर गया ।' बाबूजीने उदास होकर कहा कि, मदनजी, यह स्वप्न अच्छा नहीं है । तत्पश्चात् जो होना होता है, बाबूजीकी धारणाके अनुसार वही हुआ भी । सबसे छोटा बच्चा खेलते-खेलते एक दिन अचानक रोने लगा । उसकी रोने की बीमारी दूर हुई नहीं । मथुरा, वृन्दावनके अच्छे अच्छे डाक्टरोंने चिकित्साकी, झाड़-फूंक भी हुई, पर कुछ लाभ नहीं हुआ । निराश होकर बच्चेको दिल्ली ले गया । ५-७ दिनों तक इधर-उधर दौड़ता रहा । पर कोई लाभ नहीं । वही केवल रोने की बीमारी । एक दिन बाबूजी ने कहा कि, 'आपने भूल की । बच्चेको यहाँ क्यों ले आये ? मारना जिलाना तो हरिके हाथ है । वे कृपालु तो सब जगह हैं । जहाँ चाहेंगे, डाक्टर या सयाना, जो भी बनकर, किसी भी तरह रक्षा कर सकते हैं । आप तो भगवान् के पुजारी हैं । आपका तो उनमें दृढ़ विश्वास होना चाहिए । अतः वापस मथुरा ले जाकर उन्हींसे प्रार्थना कीजिये ।' मैंने बाबूजीकी आज्ञा मानकर बच्चेको मथुरा वापस ले आया । जो होना था, वही हुआ । दूसरे दिन ही लड़का चलता बना । इसका संकेत तो बाबूजी स्वप्नके आधारपर दो मास पूर्व ही कर चुके थे । मैं ही भ्रमवश इधर-उधर भटकता रहा । यह थी बाबूजीकी भगवान् में दृढ़ आस्था ।

बाबूजीकी दया और उदारताकी सैकड़ों कहानियाँ हैं, जो सदा मेरे हृदय-पटलपर अङ्कित

रहेंगी। मथुराकी धर्मशालामें कई वर्षोंसे प्रतिदिन सायंकाल साधुओंको भोजन दिया जाता था। संयोगकी बात, एक दिन बाबूजी भी उस समय मौजूद थे। साधुओंकेलिये भोजन तैयार किया जा रहा था। बाबूजी ने जब भोजन बनते देखा, तो प्रश्न करने आरम्भ कर दिये—'रसोइया भोजन ठीक ढङ्गसे बनाता है या नहीं? गेहूँ साफ कर लिया जाता है या नहीं? गेहूँ में मिट्टी या कंकड़ आदि तो नहीं रहता?' मैंने बाबूजीके प्रश्नोंका यथोचित उत्तर देकर उन्हें संतुष्ट करनेका प्रयत्न किया, पर बाबूजी को संतोष नहीं हुआ। उन्होंने एक रोटी ली। उसमें से एक टुकड़ा तोड़कर मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा कि, खाकर देखो, कैसी बनी है? मैं रोटीका टुकड़ा हाथमें लेकर बाबूजीकी ओर देखही रहा था कि, बाबूजी ने दूसरा टुकड़ा तोड़ा और उसे मुँहमें डालते हुए कहा–'रोटी तो ठीक बनी है।' फिर उन्होंने दालकी पतीली में झाँककर देखा और कहा कि, दाल कम घुटी हुई लगती है। उन्होंने मेरी ओर देखकर आदेशित करते हुए कहा—'देखो भोजन ऐसा होना चाहिये कि, खानेवालेका मन प्रसन्न हो। यह तभी संभव होगा, जब आप स्वयं सप्ताह में एक बार इस खानेमें से थोड़ा खाया करें।' बाबूजीकी इस महानताको देखकर मैं स्तब्ध रह गया। सोचने लगा, बाबूजी मनुष्य नहीं, देवता हैं।

बाबूजी साधु-महात्माओंकी व्याख्या वर्ण या विद्वत्ताके आधार पर नहीं करते थे। एकवार उन्होंने कहा, आजकल सदाव्रतमें कितने महात्मा खाते हैं? मैंने कहा, साधु-महात्मा दो-चार ही होते हैं, पर भिखारी अधिक होते हैं। बाबूजी ने कहा, जो साधु-महात्मा होते हैं, वे किस कोटिके होते हैं। मैंने कहा, वे पठित भी होते हैं और खान-पान तथा स्पृश्यापृश्यका ध्यान भी रखते हैं। बाबूजी ने कहा, पढ़ने या स्पृश्या-स्पृश्यका विचार करने मात्रसे ही कोई महात्मा नहीं होता। जो राम का नाम लेता है, भक्ति करता है, वास्तवमें वही महात्मा है। चाहे वह किसी जाति या वर्णका हो, और पढ़ा हुआ हो या न हो। बाबूजी कहा करते थे कि, कोई माँगने आवे तो उसे मना नहीं करना चाहिये। चना, गुड़, रोटी, दूध जो भी समयपर उपलब्ध हो, देकर उसकी आत्माको प्रसन्न करना चाहिए। भूखे आदमीको समय पर जो भी मिल जायेगा, उससे उसे संतोष होगा।

एक बार बाबूजी काशीमें थे। पूर्णिमाके दिन गीता-मन्दिर मथुरामें सत्यनारायण भगवान्‌की कथा हुई थी, सवा पांच सेर आटेकी पंजीरी तथा फलादिका प्रसाद बना था। संयोगकी बात, उस दिन यात्रा चल रही थी, मन्दिरमें भीड़ अधिक हो गयी, पंजीरीका प्रसाद समाप्त हो गया। कुछ दर्शनार्थी प्रसाद प्राप्त नहीं कर सके। उसी रात्रि काशीमें बाबूजीको स्वप्न हुआ कि, मथुरामें, मन्दिरमें प्रसादकी कमी पड़ी है। दूसरे दिन बाबूजीका काशीसे तार मिला कि, प्रसादकी कमी कहाँ पड़ रही है? बहुत सोचनेके पश्चात् कथावाली बात याद आयी। बाबूजीको पूरी बात लिखी गयी। इसके पश्चात् बाबूजीका पत्र आया कि, ऐसे अवसरोंपर यदि तत्काल कमी पड़ जाय तो किशमिश, इलायचीदाना, पंचामृत जो भी शीघ्र बन सके, बना लिया करो और दिया करो। दर्शनार्थियोंको प्रसादके लिये निराश नहीं करना चाहिये।

बाबूजीको स्वच्छता बड़ी प्रिय थी। वे जहाँ भी रहते, स्वच्छतापर बहुत ध्यान देते। इस उम्रमें भी उनकी घ्राण शक्ति बड़ी तीव्र थी। एक बार वे मथुरा मन्दिरकी कुटीमें विश्राम कर रहे थे। सायंकालका समय था। बार-बार नाकसे ज़ोरसे श्वांस लेकर कुछ सूंघनेकी चेष्टा करने लगे। थोड़ी देर बाद बोले—'कहींसे गोबर तथा पेशावकी बास आ रही है।' मैंने कहा, यहाँ तो कुछ भी नहीं है। सब जगह स्वच्छता है। मेरे उत्तरसे उन्हें संतोष नहीं हुआ। स्वयं उठकर इधर-उधर देखा, फिर छत पर चढ़ गये और बोले—'देखो, बाहर मालियोंकी जो गाय-भैंसें बंधीं हुई हैं, उन्हींके गोबर-पेशावकी बदबू आ रही है।' बाबूजी ने गांववालोंको बुलवाया। उनसे बड़े प्रेमसे मिले तथा उन्हें सफ़ाईके बारेमें समझाया और गन्दगीसे होनेवाली बीमारियोंसे अवगत कराया। गाँववाले भी बाबूजीसे मिलकर बड़े प्रसन्न हुए और सफाईपर विशेष ध्यान देनेकी प्रतिज्ञा की। बाबूजी गाँववालों को समय-समयपर आम, खरबूजा, केला, संतरा आदि बँटवाया करते थे, जिससे गाँववाले बाबूजीकी बहुत याद किया करते थे तथा उनके आनेकी प्रतीक्षा किया करते थे।

बाबूजी साधु-महात्माओंसे अपनेलिए कभी कुछ नहीं माँगते थे। यदि हमलोग कभी किसी साधु-महात्मासे बाबूजीकेलिए आशीर्वाद प्राप्त करते तो बाबूजी कहते, महात्माओंसे मेरे सम्बन्धमें कुछ मत कहा करो। उनसे तो केवल यही पूछा करो कि, इस देशकी जनता कब सुखी होगी? हिन्दू धर्मका उत्थान कब होगा, लोगोंमें धार्मिक भावना कब जागृत होगी? वे रात दिन केवल हिन्दू धर्म और हिन्दू जातिके उत्थानके सम्बन्धमेंही चिन्तन किया करते थे। उनके व्यक्तित्वकी यह सबसे बड़ी महानता और विशालता थी।

बाबूजी दृढ़ आस्थावान थे। बाबूजीकी रुग्णावस्थामें उनके स्वास्थ्य-लाभकेलिए बड़े-बड़े अनुष्ठान किये गए, प्रार्थनाएँ भी की गयीं। पर बाबूजीका स्वास्थ्य उत्थान-पतनके तरंगों पर सदा झूलता रहा। एक दिन मैंने दुःखी मनसे कहा, बाबूजी सुनते हैं कि, भगवान् शरणागत प्रतिपालक हैं, अपने प्यारोंकी अधिक सुनते हैं। फिर वे हम सबकी क्यों नहीं सुनते? वे आपको इतना अधिक कष्ट क्यों दे रहे हैं? बाबूजीने उत्तर दिया—'यह उनकी इच्छा है। उनकी प्रत्येक इच्छा सत्य और कल्याणमयी होती है। वे जो कुछ करें, हमें प्रत्येक अवस्थामें प्रसन्नही रहना चाहिए।' उनकी इस आस्तिकताने मेरे प्राणोंको विभोर कर दिया। क्या ऐसा महान् आस्तिक अब और कहीं देखनेको मिल सकेगा?

एकबार बाबूजी वृन्दावन, गोविन्ददेवजीके मन्दिरको (जिसका जीर्णोद्धार १,६०,००० रुपया लगाकर बाबूजीकी प्रेरणासेही बिरला जनकल्याण ट्रस्टने कराया है) देखने गए। बाबूजीके चारों तरफ पण्डे एकत्र हो गए और एक-एक रुपयेकी माँग करने लगे। बाबूजीने कहा, कुल कितने आदमी हो? पंडोंने कहा, कुल दो-ढाईसौ हैं। बाबूजीने तुरन्त ढाईसौ रुपये देनेकी आज्ञा दी। मैंने कहा कि, बाबूजी ये तो कुल २०-२५ आदमी ही हैं। बाबूजी हँसकर बोले, हैं तो इतनेही, यह मैं भी देख रहा हूँ। पर एक-एक रुपयेसे

इनका क्या बनेगा, आठ-दस रुपये प्रति व्यक्ति तो इनको मिलनाही चाहिए। बादमें मालूम हुआ कि, प्रति पण्डेको नौ रुपये दस आनेके हिसाबसे मिले थे। ऐसे थे बाबूजी दया और उदारताकी मूर्ति !

बाबूजी महान् आत्मा थे, महान् कर्मयोगी थे। वे धर्मके प्रचार-प्रसारकेलिए ही भारत-भूमिमें अवतरित हुए और धर्मका प्रचार-प्रसार करते हुए ही ब्रह्ममें लीन होगए। उनके द्वारा बनाये गये अतिथिगृह और देव मन्दिर युगों तक उनकी कीर्तिको स्थिर रखेंगे और उनकी यशपताका उड़ती रहेगी।

बाबूजी अदृश्यद्रष्टा भी थे। उन्हें अपनी मृत्युका आभास बहुत पहले मिल गया था। एक दिन जब मैं उनके दर्शनोंकेलिए उपस्थित हुआ तो उन्होंने श्रीधरजी वैद्यसे कहा, मदनजीको भीतर भेज दो, जरूरी बात करनी है। जब मैं उनके पास गया तो कुशल-मंगल पूछनेके बाद कहा, 'मदनजी, (प्रेमसे वे मुझे इसी तरह संबोधित करते थे) मैं अब अधिक दिनों तक नहीं रह सकूँगा। मैं जिस कार्यकेलिए आया था, वह कार्य अब हो चुका है, और शीघ्रही अन्तिम अवधि पूर्ण होने वाली है। आप सबसे यही कहना है कि, अपने कर्त्तव्यका पालन करते रहिए। 'वे मौन होगए और अधिक गम्भीर। ऐसा लगा, मानों वे सोच रहे हों उन लोगोंके कर्त्तव्यपर, जिन्हें वे छोड़कर जाने वाले थे। मेरी आँखोंसे आंसूकी बूँदें गिरने लगीं। मैंने रुँधे कंठसे निवेदन किया "ऐसा न कहिए बाबूजी ! आपके मुखसे यह शब्द हम कैसे सुनें ? बाबूजी हम तो अनाथ हो ही जायेंगे, आपके बिना हिन्दू धर्म और जातिको भी कोई अवलम्बन देनेवाला नहीं रहेगा। अतः बाबूजी, हमारी शेष आयु आपकेलिए समर्पित है। भगवान्से प्रार्थना है कि, वे हमारी शेष आयुको आपकी आयुमें जोड़कर और लम्बी बनादें। हम जैसे तो प्रतिदिन पैदा होते हैं और मरते हैं, पर आप जैसे महापुरुष यदा-कदाही पृथ्वीपर आते हैं।" बाबूजीकी आँखोंमें आँसू भर आए, वे मौन होगए और अधिक गम्भीर। उनके उस 'मौन'का चित्र अब भी मेरी आँखोंके सामने नाचा करता है। बाबूजीकी कितनीही ऐसी स्मृतियाँ हैं, जो मेरे लिए अमरचिह्न बन गयी हैं। मैं उनके प्यारको कभी भूल न सकूँगा। जबतक जीवित रहूँगा, उन्हें निधिकी तरह सँजोये रक्खूँगा।



दूसरोंके साथ बर्ताव

यदि आप मनुष्यकी पूजा करें; दूसरे शब्दोंमें, यदि आप मनुष्यको मनुष्य नहीं, ईश्वररूप मानें, यदि आप सभीको ईश्वर रूप, परमात्मा रूप समझें, और इस प्रकार मनुष्यकी उपासना करें, तो यह ईश्वरकी उपासना होगी।

जो कोई आपके पास आये, ईश्वर समझकर उसका स्वागत करो, परन्तु साथ-ही-साथ अपनेको भी अधम मत समझो। यदि आज आप बन्दीखानेमें पड़े हैं, तो कल आप प्रतापवान् भी हो सकते हैं।



स्वर्गीय विरलाजी के "धर्म" का उद्‌बोधक चित्र

"समदर्शन से अच्छा धर्म का पर्याय मुझे अभी तक नहीं मिला। समदर्शन जब सीमित या रूढ़ हो जाती है, तब मन की सृष्टि होती है। मत-मतांतर 'तर्क' हो सकता है, सुन्दर नहीं।"

समदर्शन

श्रीगोविन्दप्रसाद केजरीवाल

वे आदमीमें बाहर से नहीं, भीतर सेभी झांका करते थे। इस प्रक्रियामें सामने बैठा व्यक्ति लुटा-सा रह जाता था। मुझे प्रायः यही अनुभूति हुआ करती थी कि, श्रीजुगल किशोरजी बिरला मेरे अन्तरको भी पढ़ ले रहे हैं। मुझमें दस तरह के दोष हैं। अपने को लुटा देखकर मुझे बड़ी घबराहट होती थी। इस 'अन्तर-पाठ' के बाद उनके चेहरेपर एक स्मिति आती, और ऐसा लगता था, जैसे उन्होंने मेरे सारे दोषोंको माफ कर दिया हो। मैं आश्वस्त हो जाता।

उनके विराट धार्मिक स्वरूप से सभी परिचित हैं। मेरी तुच्छ बुद्धिमें धर्मकी बातें बहुत कम आती हैं। यदि आती भी हैं तो तर्क का दम्भ लिए हुए। जब भी मैंने उनकी धर्म-वार्ता सुनी, मुझे ऐसा लगा कि, इन विशिष्ट वैष्णव जनकी वृत्ति चाहे जितनी धार्मिक हो, लेकिन इनका असीम सौन्दर्य-बोध ही इनकी आत्माका मूल रस है।

मुझे याद आता है कि, एक बार मैंने उनसे बहुत डरते-डरते पूछा था—'धर्म क्या है?' उनके प्रशान्त चेहरेपर स्मितिकी वही चिरपरिचित कौंध आई और उन्होंने मुझे जो बताया, उसका सार यह था—

"जीव और प्रकृतिका तादात्म्य सुन्दरका सर्जक है। सुन्दर की अनुभूति एक समदर्शी बोधको उत्प्रेरित करती है। यह उत्प्रेरणा धर्म-समदर्शनका बोध कराती है। समदर्शन से अच्छा धर्म का पर्याय मुझे अभी तक नहीं मिला। समदर्शन जब सीमित या रूढ़ हो जाता है, तब 'मत' की सृष्टि होती है। मत-मतान्तर 'तर्क' हो सकता है—सुन्दर नहीं। सुन्दर केवल सुन्दर है, समदर्शन है और है जीव और प्रकृतिका तादात्म्य। यहां न तर्ककी गुंजाइश है, न जिज्ञासा की, मात्र है असीम विश्वास और समर्पण की भावना।' ...

श्रद्धाका लो यह सुमन हार

पाण्डेय पं० रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम' साहित्याचार्य



श्रद्धाका लो यह सुमन हार,
हे महामहिम मानव उदार !

[१]

विरजा गंगाके अवगाही,
तुमने पायी गति मनचाही।
किरणोंके रथपर समारूढ़,
हे ज्योतिर्मय पथ के राही !
तुमको अभिवन्दन नमस्कार ॥

[२]

उपकारी अवतारी नर हे।
तुम बीच हमारे अब न रहे;
है भरा हृदय, अवरुद्ध कण्ठ,
गुणगण अनन्त फिर कौन कहे ?
अर्पित केवल प्रेमानुधार ।

[३]

हम सबकी आशाके संबल,
दो आशिष संकल्पोंका बल;
शाश्वत सत्तामें सुप्रतिष्ठ
तुम जुगलकिशोर ! किशोर जुगल।
अन्तर्हित तनुमय पट उतार ॥

[४]

मंजुल मंगलमय वह अनूप,
हिन्दू—भारतका वृहद् रूप;
उद्भूत तुम्हारे मानसमें—
जो हुआ दिव्य उसका स्वरूप।
अद्भुत सांकल्पिक चमत्कार ॥

[५]

सिर केसरिया कांचन पगड़ी,
किसकी निगाह उसपर न गड़ी;
किसने न सुनी वह गुरु गंभीर—
सद्भाव भरी भाषा तगड़ी ?
ऋषितुल्य तुम्हारे सद्विचार ॥

[६]

मन्दिर विद्यालय अस्पताल,
जनहित विधान शतशः विशाल;
भारतके कोने-कोनेमें—
छविमान कान्तिमय कीर्तिजाल।
औदार्य अमित अनुपम अपार ॥

[७]

लौटा निहाल जो ढिग आया,
सबको तुमने सुख पहुंचाया;
कल्पद्रु ! तुम्हारी छाया में—
किसने कब क्या न कहो पाया ?
किसपर न महा आभार भार ?

[८]

देशात्मबोधके मूर्त रूप,
हे हिन्दू उरके भव्य भूप;
'ये जैन-बौद्ध ये सिक्ख-आर्य-
सब एक खानकी मणि अनूप।'
उद्‌गार तुम्हारा यह उदार ॥

[९]

मन्दिरसे न्यारी कारा वह,
पावन पुण्यस्थल प्यारा वह;
जो क्रूर करोंसे हुआ ध्वस्त—
तुमने इतिहास सँवारा वह।
कर जन्मभूमिका समुद्धार ॥

[१०]

तुम तपे तपाये कनक तुल्य,
निर्लिप्त सनन्दन सनक तुल्य;
वैभवशाली भवसे असंग,
ज्ञानी कर्मठ थे जनक तुल्य,
धनवान् अकिंचन निर्विकार।

[११]

गीताके पथ पर चलता तन,
भगवद्‌गीता-मन्दिर था मन;
उसके ही योग प्रदीपोंसे
आलोकित उद्योतित जीवन।
आचरणों में गीता-प्रचार ॥



विशालताकी पृष्ठभूमिपर प्रतिष्ठित
सनातनधर्मका एक चित्र

"अमर ज्ञानको प्राप्त कर लेनाही सनातन धर्म है। इसीलिए इस धर्मकी महत्ता थी। यह धर्म मूर्तिमें भी ईश्वर देखता है और चलते-फिरते जीवोंमें भी ईश्वरके दर्शन करता है। यह धर्म गो और कुत्ते, ब्राह्मण और चांडालमें व्यापक आत्माका दर्शन करता है। इसीलिए यह महान् है।"

सनातनधर्मकी अमृतमयी दृष्टि

श्रीमहीलाल शर्मा

सनातनताके सम्वन्धमें भारतीय दृष्टि उसकी अपनी अनूठी दृष्टि है। निराकार और साकार, व्यक्त और अव्यक्त, जैसी आपाततः विपरीत धारणाओंमें तथ्यका दर्शन करनेवाली यह दृष्टि सही तौरपर विचार करनेवाले व्यक्तियोंको भ्रान्त और आडम्बरपूर्ण लगती है। पर वस्तुतः यह दृष्टिही भारतीय धर्मको अन्य धर्मोपर विशिष्टता प्रदान करती है। हमारे देशने परमात्माको जिन-जिन दृष्टिविन्दुओंसे समझनेका यत्न किया है, उनकी विविधता आधुनिक मस्तिष्कको चकरा देनेवाली है। एक मतने अन्य मतसे विरोध उत्पन्न नहीं होने दिया, क्योंकि दृष्टविन्दुका भेद होनेपर भी वस्तुस्थितिमें कोई अन्तर नहीं आता है। 'अनिराकरणं मे अस्तु'—इस विचारशैलीके कारण आग्रहहीन, कटुतातीत वातावरणमें हमारे देशमें तत्त्वज्ञान पुष्पित-फलित होता रहा है। ऋषियोंने ईश्वरकेलिए 'ऐसाही है,' का हठ नहीं किया। किसीने उसे निराकार, निर्गुण कहा, किसीने साकार, सगुण कहा। सन्तोंने बताया कि, वह इन दोनोंसे परे है—'वह आननरहित है, पर सकलरस-भोगी है, बिना वाणीके बड़ा वक्ता है। 'रामचरितमानस'में गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं कि, अज्ञानियोंकेलिए जल, हिम और उपल (ओला) अवस्थाभेदसे अलग-अलग होते हुएभी समझदारोंको दृष्टिमें तत्त्वतः एक हैं।

बहते हुए जलको हम देखते हैं, पीते हैं। दूसरा जल 'मेघ' है। भाप, ओला भी जलकेही रूप हैं। बर्फ भी जल है। जलका एक और अव्यक्तरूप भी है, जो सर्वत्र व्याप्त है। व्याप्तभावके कारणही जलको 'आपः' कहा गया है। समझदार लोग इसे मानेंगे और कहेंगे कि, हाँ वास्तवमें बात ठीक है। जैसे जलके इन पाँचों रूपोंको समझनेकेलिए विज्ञान की आवश्यकता है, ऐसेही प्रभुके समस्त रूपोंको समझनेकेलिए विशेष ज्ञान अपेक्षित है।

ईश्वर व्याप्त भी है, प्रकट भी है, साकार भी है, निराकार भी है, व्यक्त भी है, अव्यक्त भी है। कहाँ तक कहें—शान्त भी है, तरंगित भी है। जो इस ब्रह्मको सब प्रकारसे समझ लेता है, देख लेता है, वह किसीसे घृणा नहीं करता, सब उसके अपने होते हैं। वह सबसे प्यार करता है, क्योंकि प्रत्येक में वह अपने प्यारेको देखता है।

इस ज्ञानको प्राप्त कर लेनाही सनातनधर्म है। इसीलिए इस धर्मकी महत्ता थी। यह धर्म मूर्तिमें भी ईश्वर देखता है, और चलते-फिरते जीवोंमें भी ईश्वरके दर्शन करता है। यह धर्म गौ और कुत्ते, ब्राह्मण और चांडालमें व्यापक आत्माका दर्शन करता है। इसीलिए यह महान् है।

इस संसारमें तीन प्रकारके लोग देखनेमें आते हैं। एक तो वे हैं, जो कहते भर हैं कि, 'ईश्वर है', पर जहाँ कोई ऐसी-वैसी बात आई कि, अलग। दूसरे वे हैं, जो कहते हैं कि, 'है ही नहीं', जैसे हिरण्यकश्यप, चार्वाक् आदि। तीसरे वे हैं, जो सच्चे आस्तिक कहे जा सकते हैं, जिन्हें हर वस्तुमें प्रभु नज़र आते हैं, हर काममें ईश्वरका हाथ नज़र आता है। प्रह्लाद सच्चा आस्तिक था। पिताने उसे घोर दुःख दिए। पर हर कष्टमें वह प्रभुकी कृपा देखता रहा। कहीं भी विचलित नहीं हुआ। अन्तमें उसने संसारको दिखा दिया कि, पत्थरमें भी भगवान् हैं। पिताने उसे खम्भेसे बाँधा था, पर उसे क्यापता था कि, वह प्रभुसे बाँधा जा रहा है। सच्ची आस्तिकता इसे कहते हैं।

भक्त एकनाथ सच्चे आस्तिक थे। उन्होंने गद्हेमें प्रभु-दर्शन कर, गंगोत्रीसे लाया जल शिवजीको चढ़ानेके पूर्व उसे पिला डाला। रामकृष्ण परमहंस आस्तिक थे, जो हर स्त्री में माँ के दर्शन करते थे। गली-गली फिरनेवाली भिखारिनके चरणोंमें शीश रखकर वह पूछने लगे, "माँ तूने इतने रूप क्यों बना रखे हैं?" महात्मा गांधी सच्चे आस्तिक थे, जिन्हें शत्रुओंसे भी प्रेम था। उन्हें हर काममें ईश्वरका हाथ नज़र आता था।

यह है वास्तविक ज्ञान। जो ज्ञान हमें संकीर्ण बनाता है, संकुचित शिकंजेमें जकड़ देता है, वह अज्ञान है। वह मनुष्यका धर्म नहीं, भारतका ज्ञान नहीं। सनातनधर्म तो वहीं है, जो आदिकालसे चला आ रहा है। इसने सारे सम्प्रदायोंसे ऊपर उठकर, सब मतोंकी छत पर चढ़कर आकाशको देखा है। तभी तो वह उसे ठीक-ठीक देख सका। आज हम कहाँ उस धर्मको मानते हैं, कहाँ प्रभुके सब स्वरूपोंके दर्शन करनेकी चेष्टा करते हैं? कोई उसे सगुण मान बैठा है, कोई निर्गुण। कोई उसे निराकार कहता है, कोई साकार। कोई उसे मूर्ति में देखता है, कोई चेतनमें। द्वेषकी अग्नि धर्मवालोंको जला रही है। यह सब क्या है? वास्तवमें हमने प्रभुको जाना ही नहीं। वह तो सर्वत्र है। जैसे जल, हिम और उपल अलग-अलग नहीं हैं, वैसेही प्रभुके रूप भी नितान्त भिन्न नहीं हैं। बस यही सनातन दृष्टि है—उसकी अपनी विशिष्टता है, समग्रता है।

●

"साहित्यके विभिन्न प्रवाह हैं। उन प्रवाहोंमें वह प्रवाह, जो भाव-प्रवण है, हृदय और प्राणोंके रससे उद्वेलित है, शाश्वत है। उसमें वह, जो ईश्वरके लिए है, उस शाश्वतताकी 'स्थिर शक्ति' है।"

नए ग्रंथ, नए विचार

श्रीविवेचक

गीता प्रदीप : श्रीमद्भगवद्गीता-हिन्दी अनुवाद सहित—मूल प्रणेता : श्री अरविन्द; संकलनकर्त्ता एवं अनुवादक : केशवदेव आचार्य; प्रकाशक : दिव्य जीवन साहित्य प्रकाशन, पांडीचेरी-२; पृष्ठ संख्या : १६०; मूल्य : ४ रुपये।

'गीता प्रदीप' में श्रीमद्भगवद्गीताके मूल श्लोकोंके साथ उनका वह हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ है, जिसका संकलन श्री अरविन्द कृत "ऐसेज़ आन द गीता" नामक उनके गीता-भाष्य से किया गया है। यद्यपि श्रीमद्भगवद्गीताके हिन्दीमें अनेक अनुवाद हो चुके हैं, तो भी उस ग्रन्थकी ऐसी महानता और विशेषता है कि, नये-नये अनुवाद—संस्करणोंका स्वागत सर्वथा उचित होगा। विशेषतः श्री अरविन्द जैसे युग-पुरुष द्वारा दिये गये गीताके अर्थको हिन्दी भाषामें उपलब्ध होना ही चाहिये। आचार्य श्री केशवदजीने "गीता-प्रदीप" के द्वारा श्रीअरविन्दके गीतार्थका संकलन तथा हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत करके हिन्दी जगत्की निश्चयही सेवाकी है। यह प्रकाशन गीताके उन सभी अध्येताओंके लिए बहुत उपादेय होगा, जो अँग्रेजी भाषा नहीं जाननेके कारण श्रीअरविन्दके गीतार्थको समझनेमें असमर्थ रहे हैं। साथही हिन्दी भाषाके माध्यमसे श्रीमद्भगवद्गीताका परिचय प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियोंके लियेभी यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

स्वामी विवेकानन्द, जीवन और दर्शन—लेखक श्री ह० माहेश्वरी, एम. ए., पी-एच. डी., प्रकाशक, श्रीरामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन। मूल्य, १ रुपया ५० पैसा। पृष्ठ संख्या १२२, छपाई-सफाई उत्तम।

प्रस्तुत पुस्तक अपने नामके अनुरूपही स्वामी विवेकानन्द और उनके जीवनादर्शपर एक स्तुत्य प्रयास है। स्वामी विवेकानन्दपर कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, पर प्रस्तुत पुस्तकमें लेखक का अपना विवेचनात्मक दृष्टिकोण है। लेखकने अपनी विवेचनात्मक शैलीमें स्वामी विवेकानन्दके जीवन-वृत्तों पर प्रकाश डालते हुए, उनके जीवन-दर्शन के निगूढ़तम सिद्धान्तोंको, स्पष्ट और सरल ढंग से सामने प्रस्तुत करनेका सफल प्रयत्न किया

है। यद्यपि पुस्तकका विषय गंभीर है, पर लेखककी रोचक भाषा, शैली और भावाभिव्यक्ति के कारण कहीं भी ऊब नहीं उत्पन्न होती, अपितु विषयमें मन रमता है, और बोध गम्यतामें सहायता प्राप्त होती है।

पुस्तक पठनीय और संग्रहणीय है।

मानस स्वरूप निर्णय-प्रथम भाग—लेखक–ज्यो० चन्द्रशेखर चतुर्वेदी, प्रकाशक, ज्यो० चन्द्रशेखर चतुर्वेदी, मारूजीकी गली, मथुरा। पृष्ठ संख्या-८२, मूल्य १) रुपया।

श्रीरामचरित मानसके सैद्धान्तिक स्वरूपोंकी विद्वान् लेखकने अपनी प्रस्तुत पुस्तकमें विवेचनाकी है। श्रीरामचरितमानसके सम्बन्ध में, लेखकका विशद दृष्टिकोण है। लेखकने अपनी कृतिमें अपने दृष्टिकोणको ही व्यक्त किया है। श्रीरामचरितमानसकी गहराइयोंमें डूबनेवालोंकेलिये पुस्तक उपयोगी है।

श्रीमद् छप्पय भगवद्गीता (सार्थ)–लेखक:—श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी, प्रकाशक– संकीर्तन-भवन धार्मिक न्यास, झूँसी, प्रयाग। मूल्य सजिल्द ४ रुपये, अजिल्द ३ रुपये।

श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी भारतके श्रेष्ठतम संत हैं। साधनाके साथ ही साथ वे भक्ति-साहित्यके प्रणयनमें भी चिरख्याति प्राप्त कर चुके हैं। उनकी भागवती कथा और उनका श्रीमद्भागवत्का पद्यानुवाद भक्ति-साहित्यकी एक अमर निधि है। उन्होंने भागवती कथाके रूपमें पौराणिक साहित्यका अभूतपूर्व मंथन किया है।

प्रस्तुत पुस्तक, जो सुन्दर कागज पर आकर्षक ढङ्गसे मुद्रित है, गीतापर आधारित है। इसमें गीताके मूल श्लोकों और उनके अर्थके साथ ही साथ हिन्दीके 'छप्पय' में उनका रूपान्तरण भी किया गया है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, ब्रह्मचारीजीका यह प्रयास सर्वथा नवीन है। नवीनके साथ ही साथ स्तुत्य भी है। उन गीता प्रेमियोंकेलिए, जो संस्कृत नहीं जानते, और हिन्दीमें पद्य रूपमें उसे पढ़नेकेलिए इच्छुक रहते हैं, प्रस्तुत पुस्तक बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी। 'छप्पय' की भाषा 'व्रज' है, जो सरस होनेके साथ ही साथ बड़ी सरल भी है।

गीता माताकी गोद में—लेखक-श्रीसीकर। प्रकाशक–श्री गीता आश्रम, १० सदर बाजार, दिल्ली कैंट। मूल्य दो रुपये।

प्रस्तुत पुस्तक दूसरे भागका प्रथम खण्ड है। श्री सीकर गीताके मर्मज्ञ और विवेचक हैं। उन्होंने गीताका मन्थन करके, बहुतसे उपयोगी निबन्ध लिखे हैं, जो 'गीता माताकी गोद में' नामसे पुस्तक रूपमें क्रमानुक्रम प्रकाशित हो रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक उसी कड़ीमें एक है। प्रस्तुत पुस्तकमें ३२ निबन्ध हैं। सभी निबन्ध गीतापर आधारित हैं। इन निबन्धोंकी विशेषता है कि, वे जीवनको गहराईके साथ स्पर्श करते हैं। गीतामें अन्तर्निहित 'मर्म' को समझनेकेलिए पुस्तक पठनीय और संग्रहणीय है।

प्रिय मिलन—लेखक—श्रीनन्दकिशोर झा। प्रकाशक-देव वन्धु प्रकाशन, श्रीनगर, बेतिया, चंपारण। मूल्य—४ रुपये।

प्रस्तुत पुस्तक एक काव्य ग्रंथ है, जो कई ऐसी पौराणिक कथाओंपर आधारित है, जिनमें प्रिय-मिलनकी भावनाओंका वैशिष्ट्य है। जैसे—श्रीकृष्णका रुक्मिणीसे परिणय, और प्रद्युम्न और रतिके समागम आदि। यद्यपि कथाओंमें 'प्रिय मिलन' ही मुख्य रूपसे है, पर उसके साथ ऐसी कथाएँ भी जुटी हैं, जो वहुरंगी हैं। अतः कहनाही पड़ेगा कि, कथाओं के चयनमें वहुलता है। कथाओंका काव्यमें गुंफन काव्य-कलाकी दृष्टिसेही हुआ है। भाव, भाषा, शैली और छन्दमें सुष्ठता और प्रवाहमयता है। काव्य प्रेमियोंकेलिए पुस्तक पठनीय है।

ब्रह्मवाणीका दीपावली अंक—सम्पादक-कृष्णमुनि प्रभाकर, व्यवस्थापक—मुरलीधर दुतोण्डे, ११२७७ डोरीवालाँ करौलवाग, दिल्ली, वार्षिक शुल्क तीन रुपये।

'ब्रह्मवाणी' ब्रह्मविद्या प्रचारक मासिकी है। इसका प्रकाशन वारह वर्षोंसे हो रहा है। प्रस्तुत अंक 'दीपावली अंक' है, जो विशेपांकके रूपमें है। लेखोंका चयन पत्रिकाके नाम के अनुरूप है। कुछ लेख बड़े सारगर्भित हैं, जो ब्रह्मविद्याके रहस्योंका उद्‌घाटन करनेमें सक्षम हैं। पत्रिका ब्रह्मविद्या प्रेमियोंकेलिए पठनीय है।

ज्ञानदा—सम्पादक—ज्यो० राधेश्याम द्विवेदी। सह सम्पादक—श्रीराधेश्याम अग्रवाल एम० ए०, प्रकाशक—अनुसंधान भवन, मथुरा। वार्षिक मूल्य—५) रुपये। प्रस्तुत अंकका दो रुपए।

'ज्ञानदा' भारती अनुसंधान भवन, मथुराकी मुख पत्रिका है। प्रस्तुत अंक व्रज विशेषांकके रूपमें प्रकाशित हुआ है। सभी लेख विशेपांकके नामके अनुरूप ही 'व्रज' से संबंधितहैं। संपादकोंने पाठ्य सामग्रीको एकत्र करनेमें प्रयास तो किया ही है, व्रजके सम्बन्ध में अनुसंधात्मक दृष्टिकोणकी भी रक्षा की है। लेख पठनीय और सुरुचि वर्द्धक हैं।



सत्परामर्श

वही जिह्वा सफल है, जो भगवान् शिवजीकी स्तुति करती है। वही मन सार्थक है, जो शिवके ध्यानमें संलग्न होता है। वे ही कान सफल हैं, जो भगवान् शिवकी कथा सुननेकेलिये उत्सुक रहते हैं और वे ही दोनों हाथ सार्थक हैं, जो शिवजीकी पूजा करते हैं। वे नेत्र धन्य हैं, जो महादेवजीका दर्शन करते हैं। वे पैर धन्य हैं, जो भक्ति पूर्वक शिवके क्षेत्रमें सदा भ्रमण करते हैं।

स्कन्दपुराण



राष्ट्रभक्त और राष्ट्रपतिका पारस्परिक अभिवादन



सेठ जुगलकिशोर विरला तथा डा० राजेन्द्रप्रसाद

पंजीयत स० एल०—८२७

पठनीय ! संग्रहणीय !!

स्वर्गीय जुगलकिशोरजी बिरला

की

प्रथम पुण्यतिथिपर

जूनमें प्रकाशित

श्रद्धांजलि-ग्रंथ

देश-विदेशके मनोषियों द्वारा सँजोयी गयी अनुपम, प्रेरक विचार सामग्री ।

'श्रद्धांजलि-ग्रंथ' श्रीकृष्ण-सन्देशके ग्राहकोंको केवल लागत मात्रपर उपलब्ध होगा ।

प्रकाशक :

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ

केशवदेव कटरा, मथुरा

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघकेलिए देवधरशर्मा द्वारा
बम्बई भूषण प्रेस, मथुरामें मुद्रित तथा प्रकाशित ।